
MAINI TAL
Class no. 891.3
Book no. M35J
Reg no. 5237

ज़िन्दगी करवटें और सवेरा

[जीवन के यथार्थ एवं भाव पक्षों के जीवन की ही भाषा में व्यक्त करने वाला एक मनोविज्ञानिक उपन्यास]

लेखक

महेशचन्द्र शर्मा

अवध प्रकाशन

दिल्ली

प्रकाशक

अवध प्रकाशन

४४६, शीश महल

बाजार सीताराम, देहली ।

प्रथम संस्करण

२६, जनवरी १९६१

मूल्य
तीन रुपये पच्चीस नए पैसे

मुद्रक
नूतन प्रेस, दिल्ली

ज़िन्दगी करवटें और सवेरा

लेखक की अन्य कृतियाँ

मौलिक उपन्यास

१. भाव-विश्व
२. मन के आँसू : मन की धारा
३. घाटियाँ और घुमाव
४. जिन्दगी करवटें और सवेरा (प्रस्तुत)
५. सनकी

अनुवाद

१. क्लान्त पथिक
२. क्रान्तितूर्य
३. रात का सफर
४. अन्तर्राष्ट्रीय कहानियाँ
५. समुद्र और आदमी
६. गाँव की गली
७. न्याय की शव परीक्षा

१

अमृतसर के पास ही मुख्य रेल लाइन को चीरती हुई एक कच्ची सी सड़क देहात की ओर को चली गई है। शहर से सात-आठ कोस चल कर गाँवों का क्रम प्रारम्भ होता है। सड़क के आस-पास हरे-भरे गेहूं से लहलहाते खेत और उनकी डौलों के सहारे दूर तक चले गये नीम-कीकर और सरों के वृक्षों का समूह जैसे अपनी छाया ताने यहाँ के जन-जीवन को विश्राम सा देता लग रहा है। थोड़ी-थोड़ी दूरी के अन्तर पर बसे इन ग्रामों में प्रत्येक की आबादी चार-साढ़े चार हजार से कम नहीं है। दूर से देखने पर नीम की झाड़ियों के बीच एक-आध मकान चमकता दिखाई दे जाता है, पूरा गांव कहीं पास जाने पर ही अस्तित्व में आ पाता है।

इन्हीं पाँच-सात ग्रामों के बीच माहेवाल भी है। माहेवाल की आबादी भी प्राय: स ढ़े चार हजार के लगभग होगी किन्तु नहरी क्षेत्र से सटा होने के कारण अन्य गाँवों से यह अधिक सम्पन्न है। यहाँ कच्चे मकान पचास से अधिक न होंगे। फसल अच्छी होने के कारण सभी के गुजारे अच्छी तरह चल जाते हैं और अब तो समय की गति के साथ-साथ बाकी मकान भी पक्के बनते जा रहे हैं।

पंडित मुलखराज का स्कूल इस गाँव में कोई नया नहीं है। आज से बीस साल पहले जब गाँव में अंग्रेजी जानने वाला उनके सिवा और कोई न था तब उन्होंने पं० चरणदास जी के हाथों इस स्कूल का मुहूर्त करा दिया था। मुलखराज जी और उनकी धर्मपत्नी सतवन्ती, दो ही तो उनके परिवार के सदस्य थे। उन्हें कोई चिन्ता न थी। भगवान का दिया जो कुछ भी था गुजर हो जाती थी। पैतृक संपत्ति के नाम पर उनके

उनकी धर्मपत्नी और अन्य स्त्री-पुरुष सामग्री की आहुतियाँ दे रहे थे। चरण दास जी देर से पहुंचे थे इसलिए एक कोने में दुबक कर बैठ गये किन्तु मुलखराज की तेज नजरों से वह बच न सके। मुलखराज जी ने हाथ की सामग्री को कुण्ड में डालते ही खड़े हो गये और दुबके पड़े चरणदास को अपने पास लाकर ही उन्होंने दम लिया। वहाँ सतवंती के पास ही अपनी पत्नी को पहले से बैठे देख उनका विनोदी मन न रह सका। आखिर मुलखराज के कान में वे धीरे से बोल ही पड़े, 'भैया लगता है जैसे आज हम दोनों व्याह-मंडप में बैठे हैं...क्यों है न यह बात ?'

मुलखराज के ओठों पर प्रत्युत्तर में सहज सुलभ मुस्कान फूट गई—वे बोले कुछ नहीं।

इस प्रकार भव्य वातावरण में वह समारोह समाप्त हुआ। चरण-दास ने शिलान्यास का पत्थर लगाया और मुलखराज ने जहां इतना बड़ा बाग इस काम के लिए अर्पण कर दिया, वहाँ यह जिम्मा भी ले लिया कि वे स्वयं ही गाँव के बच्चों के शिक्षक बनेंगे। गाँव के और लोगों ने भी यथायोग्य सहायता का वचन दिया, कुछ उत्साही युवक इस बात के लिए तैयार हो गये कि वे दस ही रोज में यहाँ फूस के छप्पर खड़े कर देंगे।

समारोह की समाप्ति के बाद सतवन्ती और सत्यवती दोनों साथ-साथ चलने लगीं और मुलखराज चरणदास के साथ बाग में ही टहल कर बातें करते रहे। तभी एकाएक मुलखराज ने अपने हृदय की समस्त आत्मीयता को खोलते हुए, अपने स्वजन को जैसे कोई विशेष बात बताई जाती है, उसी तरह चरणदास से कहा—

'भय्या एक बात कहूँगा, पर वादा करो कि मुंह मीठा करने में में देर न होगी।"

'तुम पहले मुंह मीठा ही कर लो' चरणदास बोले।

'नहीं ऐसी बात नहीं, मुझे तुम्हारा पूरा यकीन है।' मुलखराज ने कहा, 'सुनो, बात यह है कि आज ही वह कहती थी...खुशी के आसार

दिखाई दे रहे हैं...'

'अरे सच !' आश्चर्य से चरणदास उछल कर बोले 'भई बड़ा ठग है यार तू। मुंह मीठा कराने का मुझसे वादा ले लिया नहीं तो आज तो तेरी ही ओर से होता।'

'जो कुछ है वह तुम्हारा ही तो घर में है भय्या,' मुलखराज ने प्रसन्नता को दबाते हुए कहा, 'पर आखिर तुम बड़े भय्या जो हो न, इसी लिए मुँह तुम मीठा कराओगे।'

'अरे भय्या लाख बार कराऊँगा मुँह मीठा' चरणदास ने कहा 'पर यह भी पता है, कै महीने बाकी है ?'

मुलखराज ने हाथ की उंगलियों को दिखाते हुए कहा, 'पूरे पांच बाकी हैं।'

'भई वाह' चरणदास स्वयं इतने हर्षित थे जैसे वह खुशी स्वयं उनकी अपनी हो। कुछ क्षण रुक कर बोले, 'भैया दुःख है तो इसी बात का कि मेरे करम सोये ही रह गये...नहीं तो हम एक दूसरे की सन्तान का आपस में गठजोड़ करके सदा के लिये एक हो जाते।' यह कहते-कहते उनके माथे पर दुःख की एक रेखा उभर आई, जिसे बहुत छिपाने पर भी मुलखराज की आँखों से वह छिप न सकी। मुलखराज जो अब तक गंभीर था आत्मीयता जताते हुए बोल पड़ा, 'सोच न करो भय्या ! देख लेना अब वह दिन दूर नहीं है जब तुम्हारे घर में भी उजाला होगा। मैं कहता हूँ आज ही हम दोनों प्रण कर लें कि अगर मेरे घर में लक्ष्मी हुई और तुम्हारे घर में लड़का, तो मैं तुम्हारे घर लड़का माँगने आऊँगा और अगर तुम्हारे घर लक्ष्मी पैदा हुई तो तुम मेरे घर आओगे—'

चरणदास क्षण भर के लिये सुखद कल्पनाओं के हिंडोले पर झूलते रहे और जब ध्यान भंग हुआ तो भरे स्वर से उन्होंने उत्तर दिया, 'भय्या अगर ऐसा हो जाये तो याचक बन कर हम दोनों को एक दूसरे के घर जाने की जरूरत ही नहीं। वैसे ही हम एक दूसरे से दूर नहीं हैं।

पर यह सब तो स्वप्नलोक की बातें हैं, ऐसा क्या होगा ?'

'होगा और जरूर होगा' दृढ़ विश्वास के साथ मुलखराज ने कहा कुछ ठहर कर फिर उसने कहा, 'हाँ तो भय्या, वादा करो—मेरी बात मंजूर है ? मिलाओ हाथ !'

आज के इस प्रगतिशील युग में यह बातें औरों के लिए हास्यास्पद हो सकती हैं, किन्तु इन दोनों को अपने ही युग और उसकी परम्पराओं से वास्ता था। चरणदास ने अनमने भाव से अपना हाथ मुलखराज के हाथों से छुआ भर दिया और फिर वे दोनों अपने-अपने घरों को विदा हो गये।

उन दोनों में से यह किसे पता था कि आने वाले दिनों में यही छोटी-सी बात एक बड़ा मोड़ ले जाएगी।

उधर गाँव में लोहड़ी के गीत गूंज रहे थे। सामने की हट्टी 'दुकान' वाले को जो अविवाहित था, और लोहड़ी देने के भय से भीतर दुबक गया था, चिढ़ाती हुई लड़कियाँ गा रही थीं :—

तेरी हट्टी बिच सेम।
तेरी मोटी आवे मेम॥

२

इन बातों को बाइस वर्ष बीत चुके हैं। इतनी लम्बी अवधि में जहाँ बड़े-बड़े परिवर्तन हो गये—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बँटवारा हो गया। माहेवाल से दस मील की दूरी पर जो गाँव थे उनमें से तीन अब बाधा के पार पाकिस्तान में चले गये हैं। वहाँ के लोगों में से प्रायः एक-आध ही परिवार होगा जो उन गाँवों में बसा हो। कोई कहीं चला गया, कोई कहीं। कुछेक परिवार माहेवाल में आकर बस गये। गाँवों का नकशा ही बदल गया है। जहाँ पहले सड़कों के नाम पर बैलगाड़ी की लम्बी-लम्बी लीकें पड़ी हुई थीं वहाँ अब डामर की पक्की सड़कें दिखाई देती थीं। कच्ची नहरों के स्थान पर पक्के राजवाहे बहते दिखाई पड़ते और गाँवों से अमृतसर शहर लाने-ले जाने के लिये बैलगाड़ियों के स्थान पर इक्के और ताँगे मिल जाते। जहाँ पहले खेतों में किसान हल चलाते और बैलों की पूंछ को मरोड़ी देते हुए'''आऽऽऽ'''आऽऽऽ की आवाज निकालते सुनाई देते थे वहाँ अब एक-आध खेत पर हल और बैल नजर आते, नहीं तो हर खेत में ट्रैक्टरों की गड़-गड़ सुनाई देती। कुओं पर से रहट हटा दिये गये थे और पानी खींचने का काम बैलों के स्थान पर पानी के पंप कर रहे थे।

चारों ओर सभी कुछ बदल गया था। अब गाँव में एक हाई स्कूल पंचायतघर डाकखाना और छोटा सा बिजली घर बन गया था। कच्चा मकान ढूंढ़ने पर भी कहीं नहीं दिखाई देता—सब बड़ी-बड़ी हवेलियाँ चारों ओर खड़ी हो गई थीं, कुछ लोग जिनकी हवेलियाँ अभी तक पुराने ढंग की थीं, वे अपने शहरी लड़कों की राय से नये-नये ढंग निकाल रहे थे। एक प्रकार से बाहरी साज-सज्जा पर गाँव वालों में

होड़ सी लगी हुई थी। पहले जहाँ गाय, भैंस और बैलों की संख्या से किसी की कुलीनता एवं शालीनता को आँका जाता, वहाँ अब मापदंड यह था कि किसका घर कितने नये नमूने पर बना है और किसकी खेती ट्रैक्टरों से जोती जाती है।

नये जमाने के और भी कई प्रभाव सीधे-सादे ग्रामवासियों पर हुए थे। जो लोग पहले केवल मात्र वचनों से ही हजारों का लेन-देन कर लेते थे, हँसी-खेल में नाते-रिश्ते तय हो जाते थे वहाँ अब किसी को दूसरे पर रत्ती भर भी विश्वास न था। घर-घर में मुकदमे चल रहे थे—आये दिन मारपीट और फौजदारियाँ चालू थीं। संक्षप में आज से बीस-बाइस वर्ष पूर्व जो सौहार्द्र माहेवाल गाँव में था, आज वह एक बीती कहानी मात्र बन गया था।

पंडित चरण्दास अब गाँव के बहुत बड़े धनी, संभ्रांत और सरपंच बन गये थे। उनकी लड़की ज्योति अमृतसर के एक कालेज में शिक्षा प्राप्त कर रही थी। सारे गाँव मे उनकी तूती बोल रही थी। दबदबा उनका इतना था कि आये दिन उनकी हवेली में बड़े-बड़े अफसर, थानेदार, मंत्री आदि ठहरते रहते, इससे गाँव के प्रत्येक घर में उनका रौब था। सत्यवती अब फूल गई थी। उसका डीलडौल आरामतलबी के कारण बेहद भद्दा सा लगने लगा था किन्तु जहां पं० चरणदास ने अपने पुराने दिनों को भुला कर ऐश्वर्य में अपने एक प्राण-दो शरीर-मित्रों को भी विस्मृत कर दिया था वहाँ सत्यवती उमर के साथ-साथ और भी विनयशील हो गई थी। बड़ी-साधना के बाद एक तो लड़की मिली अब लड़के की पूर्ति भी उसी से कर दोनों अपने भर उसे सुशिक्षित कर डालने पर प्राण-पण से जुटे थे।

उधर पंडित सुखराज को समय के आँधी-तूफानों ने जर्जर कर दिया था। उनके दु:ख-सुख की मित्र, उनको प्रत्येक विपत्ति के समय दिलासा दे धैर्य धारण कराने वाली सतवन्ती दो वर्ष हुए इस असार संसार की विपत्तियों को सहने के लिये उन्हें अकेले छोड़ गई है। उनको

यदि किसी का सहारा है तो अजीत का, जो अब अपने जीवन के इक्कीस बसन्त पार कर दिल्ली में बी० ए० का पाठ्यक्रम समाप्त कर रहा था। उनकी जितनी जमीन थी वह क्रमशः सब अजीत की पढ़ाई को समर्पित हो चुकी थी। डेढ़ बीघा जमीन, एक पुराना मकान, जिसकी ईंटें अब नाममात्र के लिये अपने ऊपर शहतीर का भार उठाये थीं और वह बाग जिसमें अभी तक पंडित जी गांव के बच्चों को पढ़ाते थे, यही उनकी एकमात्र निधि बच गई थी। कभी-कभी दुर्दिनों की मार से, जर्जरित अपने शरीर की दयनीय दशा पर अश्रुपात करते हुए वे अपने बारे में सोचते पर तभी आशा की एक शुभ्रोज्वल किरण उन्हें दूर कहीं चमकती सी दिखाई पड़ जाती और फिर क्षण भर में उनके चेहरे से हार के सारे लक्षण अदृश्य से हो जाते। वे अपने में एक नई स्फूर्ति का संचार अनुभव करते। कभी-कभी उन्हें इस बात का बहुत पश्चात्ताप होता कि उनके दुर्दिनों के समय सारे गांव में कोई भी अपना कहने के लिये नहीं था। चरणदास से बोलना तो दूर कतरा कर चलते थे। स्कूल वाले बाग का आधा हिस्सा चरणदास जी ने पटवारी लद्दाराम को कुछ ले-देकर अपने नाम करा लिया था। मुलखराज ने इसका प्रतिवाद करते केवल इतना भर ही कहा था, 'भय्या ऐश्वर्य सभी पाते हैं, सिरफ भले-बुरे दिनों का फेर ही आड़े आ जाता है, फिर भी बीता वक्त नहीं भूलना चाहिये...तुम्हें याद है जब इस स्कूल की शुरुआत हुई थी तब हम दोनों ने इसी बाग में, हवनकुंड की उठती हुई सुगंधि के बीच एक प्रण किया था ? अब तुम इतने बदल गये...।"

घृणा से मुलखराज का तिरस्कार करते हुए चरणदास ने उत्तर दिया था, 'सब याद है ! आखिर मैं इतना पागल नहीं हूँ कि अपनी बात भी भूल जाऊँ, पर तुमने कभी यह भी देखा है कि कौवे क्या लेकर हंसों से नाता-रिश्ता करेंगे ? भय्या वचन और "व्यौहार" सब लक्ष्मी के ऊपर है—नही तो कोई वचन नहीं और कोई 'व्यौहार' नहीं, और एक उपेक्षित सी हँसी हँस कर वे चले गये थे। उस दिन के बाद कभी

मुलखराज ने अपना दुःख औरों से न कहा—अपना रोना रोने वे किसी के पास नहीं गये। किसी दिन एक जून मकई की दो रोटियाँ सेक लीं, और किसी दिन ठंठा पानी पीकर सो गये। वे सोचते, 'कभी आयेंगे अच्छे दिन भी, जब उनके बुढ़ापे का सहारा उन्हें अब तक के सारे क्लेशों से मुक्ति दिला देगा, वे भी अपना सर ऊँचा उठाकर कह सकेंगे, मैंने बेटा पैदा किया है बेटा !'

+ + +

दिन बीतते गये और दिनों के साथ परिवर्तनों के क्रम भी नई-नई करवटें लेते रहे। बहुत दिनों के बाद अजीत अपने गांव को रवाना हुआ। अपने बापू को देखने की प्रबल चाह लिये वह विकलता से उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था, जब उसकी बाल्यावस्था का स्वप्न, उसकी आशाओं का केन्द्र माहेवाल गांव उसकी आँखों के सामने होगा—उसे वे हरे-भरे लहलहाते मकई और गेहूँ के खेत दिखाई देंगे, पानी से सरसराती नहरों में वह तैरेगा—तब उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न होगी। वह सारे रास्ते ट्रेन में बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ लिये, एक दूसरी ही दुनिया में विचरण करता रहा। इसी बीच जब वह अपनी माँ के अभाव के बारे में सोचता तो कुछ क्षण के लिये उसका अन्तर वेदना के सागर में डूब सा जाता—वह सोचता उसका बापू आज कितना विवश है, उसे सान्त्वना देने वाला भी तो वहाँ कोई नहीं। काश ! वह होतीं तो आज वह उड़ा हुआ उनकी गोद में कूद कर पहुँच जाता और कहता, 'माँ मैं आ गया हूँ—अब तुम्हें दुःख देखने को न मिलेगा'—वह उसी प्रकार बापू के पास जा उन्हें कन्धे पर उठा लेता और फिर कहता, 'बापू ! किस सोच में हो। देखो तो हमारे भाग्य का नया सवेरा हो रहा है।' वे सब कितने खुश होते। उनकी बूढ़ी आँखें कैसे खुशी से चमक उठतीं तब !

पर अब उसके पास है ही क्या ? जो कुछ था वह सभी तो रेहन पड़ा है। गांव वाले आज उनकी ओर देखना भी पसन्द नहीं करते।

दु:ख:सुख के इन भावस्वप्नों में उतराता फिर वह ज्योति के बारे में सोचता । बहुत छोटा जब वह था तब उसकी माँ उसके पिता से कहा करती, 'ज्योति को तो तुमने पैदा होने से पहले ही अजीत के लिये माँग लिया है...अब इसे बड़ा करो जल्दीसे ।'

उसे पता था कि पैदा होने से पहले ही उन दोनों के वचन हो चुके थे और उसे यह भी पता था कि अब इस बात की कल्पना भी संभव नहीं है ।

उसने कई बार ज्योति को बड़े होने के बाद देखा है, और ज्योति ने भी, किन्तु ज्योति में एक बड़प्पन की भावना है, नारीत्व का उसमें अभी विकास नहीं हुआ । वह गांव में अपने घर को सबसे बड़ा और अपनी प्रतिष्ठा को सबसे ऊँचा समझती है । उसे इस बात का ज्ञान नहीं है कि वह जन्म से पूर्व ही किसी को दे दी गई है, यदि पता होता तब भी शायद वह इस प्रगति के युग में ऐसी मूर्खता न करती ।

अजीत जब विचारों के संघर्ष से क्लान्त हो अमृतसर स्टेशन पर उतरा तो उसके छोटे से होल्डाल और सूटकेस को उठाने के लिये कुलियों में छीना-झपटी होने लगी—काफी देर तक उनका बीच-बचाव करने में अपने को असमर्थ पा स्वयं ही अपना सामान वह वेटिंग हाल में उठा लाया । वहाँ से एक लड़के के माथे पर होल्डाल रख जब वह तांगों के अड्डे पर पहुँचा तब दिन के बारह बज रहे थे ।

हजार-हजार दु:खो का असह बोझ लिये वह ताँगे पर अपनी बालस्मृतियों के गाँव माहेवाल को रवाना हुआ तो उसका मस्तिष्क चंचल था—एक साथ ही हजारों कर्तव्य सामने आ जाने पर जो स्थिति मनुष्य की होती है, वही स्थिति अजीत की थी ।

३

अजीत को माहेवाल आये आज दस दिन हो गये हैं। अपनी गरीबी में भी वह बूढ़े बाप का स्नेह पा, सारे दुखों से बेखबर सा है। इन दस दिनों में वह गाँव में प्रायः सभी से मिल चुका है। मुंह दिखावे के लिए जैसी सहानुभूति साँसारिकता के नाते दिखाई जाती है, वह सभी जगह उसे देखने को मिली है। सभी ने अपने घड़ियाली आँसू उसकी माँ को याद कर, उसके नम्र स्वभाव की चर्चा कर उसके सामने बहाए हैं— उसके बाप के पिछले दिनों की वर्तमान दिनों से तुलना कर असीम सहानूभूति प्रकट की है साथ ही कई ने उसे उसके कर्तव्य के प्रति सजग करते हुए कहा भी है 'पढ़ लिख गया है काके...वाह...शाबाश! हुण पियो नू उबार...व्या कर...घर वसा...।'

उसी के गाँव की एक बूढ़ी काकी ने उसके कन्धे पर सर टिका कर आँसुओं की एक पूरी नदी प्रवाहित करते हुए कहा था 'पुत्तर! चरण-दास वदल गया ते की होया...तेरे करम ते नईं वदले......।'

इसी प्रकार की न जाने कितनी झूठी सहानुभूतियाँ उसे मिली थीं, जिन्होंने उसके मानस को धैर्य देने के स्थान पर और भी दुःखी बना दिया था। उसे अपने पिता के विद्वेषरहित हृदय के प्रति असीम श्रद्धा है, तभी तो उनके कहने पर वह खील-और बताशे बाँध कर चरणदास से मिलने उनकी हवेली हो आया था।

उसने चरणदास के पैर छुए थे तो उन्होंने बनावटी स्वर में कहा था 'ज्योन्दा रह....' और फिर जब उसने खीलों की टोकरी उनकी ओर बढ़ाई थी तो उन्होंने एक व्यंग्यात्मक हंसी हँसते हुए उस टोकरी को

देखकर कहा था 'दिल्ली से आया है बेटे ! यह खील बतासे लेकर !. अरे, धंटे वाले के यहाँ से मिठाई लाया होता !' फिर चेहरे पर दूसरा भाव लाते हुए उन्होंने स्वयं ही कहा था "खैर ! जो ले आया ले आया ...सुना ठीक तो है ?' इस प्रकार फिर बातों का क्रम चल पड़ा था। वह चरणदास के व्यंग्य से मर्माहत होकर भी किसी प्रकार कुछ देर और वहाँ न जाने कैसे बैठा रहा था, यह उसे भी पता नहीं।

फिर जब वह चाची सत्यवती से मिलने बिना चरणदास से पूछे ही भीतर जाने लगा तो चरणदास की उस मुद्रा से वह अपरिचित नहीं, जो उनके चेहरे पर अंकित हो गयी थी।

सत्यवती चाची ने उसके साथ जैसा व्यवहार किया, उसमें उसे आत्मीयता की अनुभूति अवश्य हुई। उन्होंने उसकी बलैयाँ ली थीं और सजल आँखों से कहा था 'सतवन्ती नहीं रही काका ! कोई नहीं—सब का यही होना है एक दिन...।'

और बहुत सी आत्मीयता की बातें उन्होंने कहीं थी, फिर ज्योति को पास के कमरे से बुलवा कर कहा था।

'कुड़िये ! नी देख, अजीत आया ए !'

ज्योति, जो कुछ दिनों की छुट्टी पर अमृतसर से गाँव आई हुई थी, माँ के कहने पर जहाँ अजीत बैठा था, आई थी। शिष्टाचारवश उसे अजीत से नमस्ते भी करनी पड़ी थी। उसके बारे में एक-दो बातें पूछ कर अजीत अपने घर चला आया था।

चरणदास से हुई बात को जब ग्लानि अनुभव करते हुए उसने अपने पिता को बताया था तब उन्होंने उस पर तनिक भी दुःख व्यक्त किये बिना कहा था, 'उसका भाग्य उसके साथ है बेटा, हमारा भाग्य हमारे साथ। प्रेम से तुम जो कुछ उसे दे आये हमारी तरफ से वही प्रेम की सौगात है—उसने हँसी उड़ाई तो हमारा इसमें क्या बिगड़ा ?'

इस प्रकार दुःख-सुखों की हिलोरों में अजीत के दिन बीत रहे थे। इन दिनों वह प्रायः अपने आम के बाग में समय काटता और मुलखराज

के स्थान पर नये-नये ढंग से बच्चों को पढ़ाता । वह बच्चों को नई-नई बातें बताता, उन्हें पत्रिकाओं में चित्र दिखा कर चन्द्रलोक के लिए छोड़े जाने वाले रॉकेट और इसी प्रकार के विभिन्न मनोरंजक बातों की जानकारी कराता । बच्चे इन थोड़े ही दिनों में उससे खूब हिल-मिल गये थे । वहाँ से समय निकाल कर वह नहर की ओर निकल जाता और वहाँ घंटों बैठा कुछ पढ़ता या फिर पेंसिल से स्केच बना कर मन लगाने की चेष्टा करता । शाम को घर लौट कर वह पिता के साथ रोटियाँ बनाने में जुट जाता मन ही मन जब वह उनको इस अवस्था में यह सब करते देखता तो उसकी आँखें सजल हो जाती पर वह धीरे-धीरे उन आँसुओं को पी जाता ।

स्थिरता नाम की कोई वस्तु इस संसार में नहीं है । एक के पश्चात दूसरी, दूसरी के पश्चात तीसरी घटनाओं के क्रमशः घटित होते रहने को ही लोग परिवर्तनशील संसार कहते हैं । मनुष्य नहीं चाहता कि तेजी से घटनाओं का चक्र चले, विशेषतया ऐसी घटनाओं का जिनसे किसी का अहित हो, विवाद हो, कटुता बढ़े किन्तु वह स्वयं पर नियन्त्रण नहीं पा विधि के आगे बाध्य सा हो गया है । कभी-कभी छोटी सी घटना भी जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन ला देती है और वह जब घटित होती है तो अनायास ही । एक दम ऐसे जैसे आकाश से उल्कापिंड गिर पड़ा हो ।

ऐसी ही एक घटना उस दिन अजीत के बाग में घटित हो गई, जहाँ ज्योति अपनी अमृतसर से आई सहपाठिनों के साथ पिकनिक पर आई हुई थी । बाग के दो भाग हो चुके थे । एक में मुलखराज का स्कूल था और दूसरे हिस्से में बाँस के डंडों की एक आड़ सी लगी थी, फिर भी इस पार से उस पार का दृश्य साफ दिखाई पड़ता था । हाँ, तो वे सब लड़कियाँ तेजी से काठ की कुछ गेंदों को उछाल रहीं थीं—ज्योति और उसकी सहपाठिनों ने अपने दुपट्टे शलवारों और कुर्तियों के बीच में ऐसे कस कर बाँधे हुए थे जैसे वे सब ड्रिल के लिये खड़ी हों, उन सब ने इसी

प्रकार अपनी दो गुतों वाली लटों को भी मरोड़ा देकर उलझा लिया था, जिससे उन्हें इधर से उधर दौड़ने में कोई परेशानी न हो। वे एक साथ ही लकड़ी की गेंदें उछाल रहीं थीं, जो दूसरी ओर खड़ी थीं उन्हें एक छोटे से बैंट के द्वारा गेंद पर चोट करनी होती थी, जिससे वह पुनः फैंकने वाली के पास पहुँच जाती। यदि वह तेजी से आई गेंद को हाथ में रोकने में असफल रहती तो उसे आउट माना जाता। यह क्रम देर से चल रहा था और खेल के बीच उनका शोर व अल्हड़ हँसी,की किलकारियाँ चारों ओर गूँज रहीं थीं।

अजीत को इससे कोई वास्ता न था। मन ही मन कुछ दुःख उसे यदि था तो इसी बात का था कि उसके बाप-दादाओं के इस बाग में दो हिस्से हो गये। भाई-चारे में मित्र का गला कैसे काटा जाता है इसकी परिभाषा उसे चरणदास के उस कृत्य को देखकर समझ पड़ी। फिर भी वह उस दिन को लाने में अधिक विलम्ब नहीं करना चाहता, जिस दिन उसके वे खेत, जो उसकी पढ़ाई में रहन पड़े हैं, उसके पास आ जाएं। वह चार बीघे जमीन को कभी उतनी महत्ता नहीं देता, यदि उस थोड़ी सी मिट्टी के बीच उसके बूढ़े बाप की आशाएँ और स्वर्गीय माँ के स्वप्न छिपे न होते तो।

उसे इसले बात कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हो रहा था, किन्तु उसी की जमीन पर यह आवाजें, यह घुड़दौड़ उसे ऐसे ही लग रही थी जैसे उसी के आस्तीन में बैठा विषधर आराम से, निर्भय हो उसी को डँस रहा हो। मन में अनुकूल-प्रतिकूल विचारों का द्वन्द्व उठने पर भी वह बच्चों को शाम का अन्तिम पाठ पढ़ा रहा था। मुलखराज घर गये हुए थे, ऐसे में उसे और भी निष्ठा से यह कार्य करना पड़ता, क्योंकि वह जानता था कि यह उसके बूढ़े बाप का व्यवसाय नहीं, उनकी साध—ऐसी साध जिसमें वे अपने हजार-हजार दुःखों को ऐसे ही भूल गये थे जैसे क्षण भर के लिये एक सर्वहारा सब कुछ हार जाने पर भी यह भूल जाने को विवश हो जाता है कि वह कुछ हारा भी है।

उस दिन लड़कों ने उससे इच्छा प्रकट की कि वह कोई गीत सिखा दे—अजीत ने कहा 'देखो भई, गीत तो मैं नहीं जानता, पर एक कहानी सुनाता हूँ। ध्यान से सुनना। और हाँ कहानी है भी गीत में ही।'

'हाँ · हाँ मास्टर जी ! सुनाइये' एक स्वर हो लड़के बोले।

'तो सुनो' कह कर अजीत ने कहना शुरू किया 'कहानी इसी बात पर आधारित है कि जो बाहर गुमान करते हैं, कभी झुक कर नहीं चलते, विनयशीलता जिनसे कोसों दूर है वे एक दिन ऐसे ही बहे चले जाते हैं जिस तरह नदी के तेज बहाव में छोटे-छोटे पौधे। पर जो शक्ति-मान होने पर भी अपनी विनयशीलता नहीं छोड़ते उन्हें छोटी-मोटी नदी तो क्या बर्साती और तूफानी नदियाँ भी नहीं छेड़ सकतीं।' कहानी की भावभूमि समझाते हुए उसने एक साँस ली और फिर कहा' 'तो एक दिन किसी बर्साती नदी से सागर ने पूछा, जो अपने साथ हजारों तिनके, फूल और पौधे बहाकर लाई थी:—

"सागर पुछदा, नदिये ! सारे—
बूटे-बूटियाँ ल्यावें
पर ना कदी बैंत दा बूटा
—एथे आरा पुचावें !'

यह लाइनें उसने कुछ स्वर और लय के साथ गाकर सुनाईं और फिर पूछा, 'अच्छी लग रही है कहानी ?'

'हाँ···हाँ···मास्टर जी सुनाते जाइये' लड़कों ने हामी भरी। अजीत ने फिर कहा शुरू किया···तब नदी ने उत्तर दिया:—

"नदी आखदी 'आकड़ वाले—
—सब बूटे पट सट्टाँ
पर जो झुके बगैरों रुख नूं
—पेश न उसते जावे !''

'बस ! मास्टर जी, इतनी ही छोटी है ?' एक लड़के ने पूछा।

'हाँ भई इतनी ही सी' हँस कर अजीत ने कहा। मन ही मन वह

सोच रहा था कितने निस्वार्थ हृदय हैं, इन बच्चों के, पर धीरे-धीरे इन्हीं में स्वार्थों की भावना भर जायेगी—

अभी वह कुछ सोच ही रहा था कि 'ठक' की आवाज से चौंक गया। देखा तो एक बच्चे के सर से खून बह रहा था और उसकी चीख सारे बाग में गूँज उठी थी। स्पष्ट था कि गेंद बाग के दूसरे भाग से आई थी, किन्तु फिर भी घबराहट में अजीत को कुछ न सूझ सका। हड़बड़ाते हुए अजीत 'क्या हो गया' कहते हुए उस लड़के के सिर को हाथ से पकड़ खून रोकने में लग गया।

लड़कों में शोर मच गया था, सब उसको चारों ओर से घेरे खड़े थे और वह उसका रक्त रोके हुए था। दूसरी ओर बाग के उस हिस्से में लड़कियों का शोर बिलकुल बन्द हो गया था। संभवतः उन सब को इस बात का पता चल चुका था अतः वे बाँस की आड़ के पास खड़ी इस ओर को देख रहीं थीं।

अजीत का दबा अवसाद क्रोध के रूप में फूट पड़ा। उसने बहुत चाहा कि सब्र से काम ले पर उस लड़के का रुदन और तेजी से बह रहा खून अजीत को दग्ध करने लगा। बिना किसी प्रकार का सोच विचार किये ही उसने घायल लड़के को अपने दोनों हाथों में ऐसे उठा लिया जैसे वह कोई शव हो और तेजी से उस बाँस की आड़ के पास पहुँच गया। उसकी फलालेन की कमीज और सफेद जीन की पतलून पर रक्त के बड़े-बड़े धब्बे फैल गये थे। उसके हाथों में भी यत्र-तत्र रक्त लग गया था। उस समय उसकी आँखों से प्रतिहिंसा की सी भावना झलक रही थी, किन्तु यह प्रतिहिंसा ऐसी ही थी-जिसमें आक्रोश भरा हुआ था, संवेदना भरी हुई थी किन्तु दग्ध कर डालने वाले अग्निपुन्ज के स्थान पर भीतर ही भीतर सुलग जाने वाली चिनगारी थी।

उसे इस अवस्था में देख ज्योति और उसकी सहेलियाँ एकाएक भयभीत सी हो गईं, जाते ही अजीत ने तनिक तेज आवाज में कहा 'मुबारक हो ज्योति जी! मुबारक हो! मुझे दुःख है कि मैंने और इस

अभागे के खून ने आपके आमोद में बाधा पैदा की, सिवा इसके मैं कर भी क्या सकता था, यही न कि एक बार अपना प्रपीड़न इस रूप में आपके सामने उगल दूं।'

ज्योति से जैसी आशा न थी, उसने अक्षम्य अपराधी की भाँति अपनी गर्दन नीचे झुका दी। कुछ क्षण यों ही स्तब्ध भाव से वह खड़ी रही, फिर अत्यन्त ही धीमे शब्दों में उसने कहा 'मुझे इससे दुःख न पहुँचा हो, ऐसी बात नहीं है'''यदि पहले से पता होता तो ऐसा खेल ही क्यों खेलती ?'

'दुःख पहुँचा है कह देने मात्र से ही इसका बहा हुआ खून वापस नहीं आ सकता' संवेदना मिश्रित रोषपूर्ण स्वर में अजीत ने कहा, 'किसी की हड्डियाँ तोड़ कर उसे कड़ाह खिलाने सदृश बात है यह तो। नहीं तो इस निर्धन बालक की माँ जब अपने बच्चे के सर को इस तरह लहू-लुहान देखेगी, इसका बाप जो एकमात्र अपनी इसी थाती के सहारे जीवन धारण किये है उसका आपके खेद प्रदर्शन से पेट न भरेगा ज्योति जी !'

ज्योति का कंठस्वर परिवर्तित हो गया था। किसी प्रतिष्ठित पर सरेआम तकाजा जताने पर जैसे उसके सर पर घड़ों पानी पड़ जाता है, उसी स्थिति में इस समय ज्योति थी। किसी प्रकार साहस बटोर कर ज्योति ने कहा 'अपनी भूल पर स्वयं ही लज्जित हूं, इतने पर भी यदि आप यही उचित समझते हों तो यही सही। मैंने कसूर किया है जी, फिर जो कहेंगे सुनने के सिवा और कोई चारा भी तो नहीं है।' वह अपनी बात समाप्त कर पुनः गम्भीर बन गई। उसके साथ की सभी लड़कियाँ खामोश खड़ी थीं, जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो।

ज्योति की प्रायश्चित्त वाली बात ने अजीत को चुप रहने के लिये बाध्य कर दिया। वह और कुछ भी न कह सका। उस लड़के के सर पर से अपना हाथ हटाते हुए उसने केवल इतना कहा:—

'ऐसी हालत में विवेक काम नहीं देता, फिर भी आपके प्रायश्चित्त के बाद भी अपने द्वारा कहे गये कटु शब्दों का मुझे दुःख है।' फिर

वह बैठकर अपनी जेब से कोई कपड़ा पट्टी के लिये तलाश करने लगा। रुमाल के छोटे पढ़ जाने पर उसने अपनी कमीज का एक भाग चर्र से फाड़ डाला। पानी से उसे गीला कर उसने घाव को ढँक दिया ज्यों ही उसे उठा कर चलने लगा ज्योति ने अनुनयपूर्ण स्वर में कहा, 'बुरा न मानें तो एक चिरौरी आपसे करूँ ?'

अजीत ने साधारण भाव से कहा 'चिरौरी जैसी तो कोई बात नहीं फिर भी कहिये।'

'मैं कहती हूँ जी···' अत्यन्त ही सम्मानपूर्ण शब्दों में ज्योति ने कहा, 'इसे मैं अपने घर लिवाये जाती हूँ। वहाँ लगन से उसका उपचार सम्भव हो सकेगा। स्वयं ही इसके घर पहुँचाने की भी व्यवस्था मैं कर दूंगी।'

अजीत ने दृढ़ता से उत्तर दिया 'नहीं इसकी आवश्यकता नहीं है।'

ज्योति के स्वर में अनुनय थी 'लेकिन ऐसा क्यों ?'

'क्यों का उत्तर मैं न दे सकूंगा,' अजीत ने कहा, फिर कुछ ठहर कर उसने कहा, 'आप इस बच्चे के सर पर नये कपड़े की पट्टी बँधवा सकेंगी, इसे दूध और कड़ाह-परसाद दे सकेंगी, इसके अतिरिक्त एक सम्पन्न घर में ऐसे अवसरों पर जो कुछ दया दी जा सकती है वह सभी कुछ आपसे संभव है परन्तु एक चीज आप इसे नहीं दे सकतीं। शायद आप यह पूछने की चेष्टा न करेंगी कि वह चीज क्या है ?'

ज्योति ने सर झुका लिया। उससे कुछ कहा न गया, फिर भी बहुत ही धीमे शब्दों में उसने कहा, 'आप सोच सकते हैं ऐसा। हर आदमी जैसी धारणा एक बार अपने मन में बना लेता है, मन द्वारा उसका प्रतिरोध होने पर भी वह नहीं चाहता कि उसे बदल दे।'

अजीत ने चलते-चलते उसकी बात सुनी किन्तु वह निरुत्तर रहा। बहुत कुछ मात्रा तक उसका रोष शांत हो चुका था। देर तक ज्योति अपनी सहेलियों के साथ वहाँ खड़ी रही, फिर जैसे अपराध करके भी वह दंड के स्थान पर पुरस्कार पा गई हो, घर लौट आई।

४

बुरे दिन किसी से कह कर नहीं आते हैं। जब उन्हें आना होता है वे आंधियाँ बन कर आते हैं। यह बात अजीत पर चरितार्थ हुई। एक दिन मुलखराज जी चारपाई पर पड़ गये। बूढ़ा शरीर था, रक्त का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था, हाड़-माँस जो था वह भी एक तो बुढ़ापे ने और दूसरे बे-बुलाई मुसीबतों ने जला-जला कर तिल कर डाला था। किसी को उनके असली रोग का पता न चल सका। चलता भी क्या, वह आयु ही ऐसी थी जिसमें रोग न होने पर भी हजारों रोग लगे रहते हैं, फिर भी लोगों का कहना था कि उन्हें सन्निपात हो गया है।

अजीत दिन रात उनकी टहल में लगा रहता। स्कूल उसने इन दिनों बन्द कर दिया था। उसे कहीं भी जाने का अवकाश न था, वह जाता भी कहाँ। उसके पास कुछ भी तो नहीं था, यदि होता तो एक बार वह शहर से किसी डाक्टर को बुलवा कर उन्हें दिखा तो लेता। पास पड़ौस के कुछ लोग इन दिनों रोगी के आस-पास आ बैठते, हाल समाचार जानते और फिर जैसे ही आये थे, वापस चले जाते। गाँव भर में एक वैद्य जी थे, वे ही सुबह शाम आते और दवा देकर चले जाते। सारी-सारी रात अजीत पिता के पास बैठा रहता। यह स्थिति आठ रोज से चल रही थी किन्तु रोगी दिन पर दिन हाथ से निकलता जा रहा था।

एक रात जब मुलखराज ने आँखें खोली तो अजीत को पास ही बैठे देख, अपने मुर्दार हाथों से एक बार छाती से सटा लिया, फिर उखड़ती हुई आवाज में कहा, 'बेटा ! कहाँ पैदा हुआ तू। कितना

अभागा हूं मैं, तुझे सुखी भी नहीं देख सका।' अपनी बात पूरी होने से पूर्व ही वृद्ध रोगी को रुलाई आ गई और विवशता के प्रतीक कुछ आंसू उनकी आँखों की कोरों से बह कर, झुर्रीदार गालों में फैल गये। यह सब देख अजीत से रहा न गया। वह उच्च स्वर में रोने लगा। रोते-रोते ही उसकी दृष्टि कलाई पर बंधी अपनी घड़ी पर एकाएक ठहर गई। क्षण भर के लिए जो सिसकी गले से ऊपर को उठती सी जान पड़ रही थी वह वहीं ठहर गई। उसने मन में कुछ सोचा, पर तभी कुछ लोग रोगी को देखने आ गये, इस कारण आँखों को पोंछ वह उनको बिठाने में लग गया। आगन्तुक मुलखराज की चारपाई के चारों ओर बैठ गये। एक ने जोर से रोगी के कानों पर मुंह ले जाते हुए पूछा—

'मुझे जानते हो भय्या मैं कौन हूँ?'

रोगी ने गौर से आगन्तुक की ओर अपनी आँखें फेरीं, फिर जैसे पहचानने की खुशी में वह प्रसन्न हो उठा हो, उसके मरणासन्न शरीर में एक कम्पन सी हुई, चेहरे पर एक दिव्य आभा सी छिटकी दिखाई दी। वह धीरे से बुदबुदाया 'तुम्हें नहीं पहचानूंगा भला? तुम लगे न मजाक करने!' यह कह वह तनिक हँसा और हँसी के ही स्वर में कहा 'तुम चरणदास हो! भय्या आ गये तुम···हाँ अच्छा ही किया··· न आते तो मैं जाता कैसे······?'

'नहीं मैं चरणदास नहीं हूँ।' उस आदमी ने जोर से कहा 'मैं राजो का "भापा" हूँ···राजो का···समझ गये न?'

'तो तुम चरणदास नहीं हो?' बेहोशी हालत में मुलखराज ने कहा, क्षण भर बाद वह चीख कर बोले 'मैं कहता हूँ अजीत···बेटा ···मेरी अर्थी उठेगी नहीं यहाँ से। समझे?'

अजीत डर गया था। उससे यह हालत देखी न गई। वह पिता की चारपाई के पास जाकर रो पड़ा। रोते ही रोते उसने अत्यन्त ही दीनवाणी में कहा 'बाबू जी···बाबू जी···आपको क्या हो गया?'

एक व्यक्ति ने उसे प्यार से समझाया 'बेटा, डरो नहीं। सन्निपात में ऐसी बेहोशी हो ही जाती है।' वह अभी सम्हल भी न पाया था कि वृद्ध रोगी ने पुनः चीख कर कहा—

'कह जो दिया है न कि मेरी अर्थी तभी उठेगी जब चरणदास कंधा लगायेगा ···रख दो अर्थी···मैं कहता हूँ, रख दो अर्थी···' इतना कहकर मुलखराज एक बार निःचेष्ट हो गये।

तत्काल पास बैठे लोगों ने नब्ज देखी। अजीत को देखते हुए राजो के भापे ने कहा

'कुछ नहीं बेटा! अब बेहोशी टूट गई है।'

अजीत ने सन्तोष की सांस ली। फिर एक क्षण तक कुछ सोच पैरों में चप्पल पहन, उसने उस व्यक्ति को लक्ष्य कर कहा, 'मैं अभी आया चाचा, जरा ध्यान रखना।'

उसके सहमति सूचक सर हिलाते ही अजीत चटपट गाँव की ओर दौड़ा जा रहा था। गाँव में सभी को मुलखराज की बीमारी का हाल मालूम था। उसे तेजी से दौड़ते देख, पानी भर रही कई औरतों को इस बात में सन्देह न रहा कि मुलखराज चल बसे हैं। किसी ने आवाज देकर पूछ लिया!—

'बीरा पंडित जी दी तबीत कैसी ए?'

'औस तरांई ए' कहता वह आगे बढ़ा चला गया—फिर किसी ने पूछा—'बेटा दौड़-क्यों रेआ ए?'

'कोई गल नई' कह वह भागता गया उसे स्तब्ध हो लोग देखते रहे। उसने सीधे चरणदास के घर ही जाकर दम लिया।

जब वह हाँफता हुआ, उनके कमरे में पहुँचा तो चरणदास चारपाई पर लेटे हुक्के के कश ले रहे थे और ज्योति उनके पास ही बैठी कोई किताब पढ़ कर सुना रही थी।

उसे इस प्रकार हाँफते आये देख चरणदास उठ बैठे। ज्योति ने भी उसे गौर से देखा, उस दिन वाली घटना के बाद आज पहली बार

वह उसे देख पाई थी। चरणदास ने विस्मय के स्वर में पूछा— 'क्यों बेटे खैर तो है न ?'

ज्योति की ओर देख अजीत संकोच में पड़ गया, और जो कहना चाहता था सहसा कह न सका। उसके भाव को लक्ष्य कर ज्योति उठ कर बाहर की ओर चली गई, लेकिन वह घर में जाने के बजाय आड़ में खड़ी बातें सुनती रही। अजीत इस बात से अनभिज्ञ ही रहा।

ज्योति को गयी देख, अजीत बिना किसी झिझक के चरणदास की चारपाई के पांयनने पर बैठ गया। उसने बिना इधर-उधर की किसी भी बात के अत्यन्त दीन हो कहा 'चाचा जी ! बहुत कुछ आप को अपना समझ कर आपके पास आया हूं।'

'कहो···कहो' चरणदास ने सीधे हो सम्हल कर बैठते हुए कहा।

तनिक साहस हुआ जान अजीत ने कलाई पर बँधी घड़ी चरणदास के पैरों पर रखते हुए कहा 'चाचा जी ! यही मेरी सम्पत्ति है। बाबू जी की हालत बहुत बिगड़ गई है। सोचता हूं अपने मन की शंका क्यों रहने दूं। एक बार डाक्टर बुलाने के लिये आपसे कुछ इसके बदले में चाहता हूं।' मुलखराज द्वारा बेहोशी में कही गई वे बातें जान-बूझ कर उसने प्रकट न कीं।

चरणदास ने घड़ी उठाकर बिना देखे सिरहाने रख ली। बचपन के अभिन्न मित्र की विपत्ति के अन्तिम क्षणों में भी स्वार्थ की भावना में आलिप्त चरणदास ने शिष्टाचार वश भी 'ना' नहीं की। घड़ी को रख दिखावटी सहानुभूति व्यक्त करते हुए उसने कहा 'कोई बात नहीं। अच्छा बुरा तो लगा ही रहता है। हाँ, अब कैसी हालात है ?'

'वैसी ही है' अजीत ने कहा 'कभी-कभी बेहोशी में कुछ बकने लगते हैं।'

सिर हिला, चरणदास ने पूछा—

'तो कितने में काम चल जायगा ?'

'जो बने चाची ज़ी ! मैं क्या कहूं ?'

अजीत ने सर नीचे झुकाए ही कहा।

चरणदास ने घड़ी निकाल कर एक बार उलट-पुलट कर देखी। जैसे वे उसका मोल कूतने की चेष्टा कर रहे हों। अजीत यह देख मन ही मन दग्ध हो उठा। इससे अधिक मानवता का ह्रास दूसरा क्या होगा? उसे एक घटना याद आ गई। जिन दिनों वह दिल्ली में था, उसने देखा था कि उसके कालेज के बूढ़े चपरासी की अर्थी एक महाजन ने बीच बाजार में रुकवा ली थी, जो अपने ऊपर बहुत-सा कर्ज छोड़कर मर गया था। जो लोग अर्थी ले जा रहे थे उन्होने महाजन से कहा था 'लाला जी, इसकी अर्थी से तो पैसे वसूल होने से रहे। वह बहुत ही बुरी हालत में मरा, फिर ऐसा कर अपने सिर नाहक पाप क्यों ले रहे हो?'

लाला जी ने उत्तर दिया था 'पाप करके तो यह जा रहा है मैं तो अपना मूल माँग रहा हूँ, ब्याज तो जहन्नुम में गया। रही अर्थी छोड़ देने की बात, सो अर्थी से ही मेरे पैसे वसूल हो जायेंगे।'

महाजन की बात से कालेज के लड़के क्रोधित हो गये थे किन्तु लोगों के समझाने पर वे शान्त थे और उन्होंने आपस में चन्दा करके अर्थी उठवाई थी और महाजन का कर्ज चुका दिया था।

अजीत को चरणदास उसी महाजन के रूप में दिखाई दिया, फिर भी रोष को दबा देने के सिवाय उसके सामने कोई और चारा न था। काफी देर तक घड़ी को परख कर देखने के बाद चरणदास ने पास की आलमारी से दस-दस के पाँच नोट अजीत के हाथ पर रख दिये। अजीत सर नीचा किये ही, नोट जेब में डाल कर उठ गया।

उसके उठते ही चरणदास ने निरे बनावटी स्वर में कहा 'और कोई तकलीफ हो तो बताना बेटा! दुःख-सुख में तो आदमी एक दूसरे के काम आता ही है।'

अजीत को यह बात छाती में शूल के समान चुभ गई। उत्तर न देने की इच्छा होने पर भी वह कहता गया 'हाँ चाचा जी! सो तो

देख ही रहा हूँ। भला आपसे बढ़ कर अपना हितू कौन है इस गाँव में।'

उसने मुड़कर यह नहीं देखा कि इस बात से चरणदास कितने कुढ़े होंगे, किन्तु यह सत्य था कि चरणदास जल-भुन कर रह गये थे। अजीत जैसे तेजी से आया था वैसे ही तेजी से चला जा रहा था। वह अभी चरणदास की हवेली से निकल कर गांव के गलियारे में उतरना ही चाहता था कि दीवार के सहारे दूर तक फैल गई लौकी की बेलों की आड़ में से उसने एक धीमी किन्तु पतली आवाज सुनी—'जरा ठहरिये !'

चौंककर वह ठहर गया। वह काली छाया उसके पास आ गई थी। उसने ध्यान से देखा तो ज्योति को पाया। इससे पूर्व कि वह कुछ कहता, ज्योति ने उसकी ओर एक लिफाफा बढ़ा कर कहा 'पिता जी के इस व्यवहार से मैं बहुत लज्जित हूँ। अपने कालेज के खर्चे में से प्रतिमास बचा कर जो रखती आई हूँ, इस लिफाफे में आपको भेंट कर रही हूँ। इसमें से सबसे पहले अपनी घड़ी आप ले आवें। यह अनर्थ मैं देख न सकूँगी, फिर बाकी जो बचे उससे उपचार का काम लें' उसने यह शब्द बहुत ही धीमे स्वर में फुसफुसाते हुए कहे थे, इनमें याचना का पुट था, विनय की झलक और एक मानवीय आदर्श छिपा था। फिर भी अजीत को यह सहायता उचित न जँची।

उसने अपने भर बहुत धीमे से, उस लिफाफे को अस्वीकार करते हुए कहा 'मैं यह दान ले न सकूँगा। आपकी सद्भावना के लिए आपको धन्यवाद।'

वह चलने को उद्यत हुआ किन्तु इस बार ज्योति उसके सामने आ गई। हठात् वह यहाँ तक पहुँच जायगी यह अजीत को आशा न थी। उसने ज्योति को एक ओर करते हुए, तनिक स्वर को ऊँचा कर कहा—

'यह आप क्या कर रही हैं। अगर कोई यहाँ आकर मुझे इस प्रकार देख ले तो जानती हैं क्या होगा ?' स्वयं ही उत्तर देते हुए उसने

कहा, 'आपका कुछ न जायगा क्योंकि आप समर्थ हैं, पर मुझे रहा-सहा जो सहारा इस गाँव में है, उससे भी हाथ धोना पड़ेगा। आप जाइये ! मैं दान नहीं लिया करता।'

उसकी बातों में सरासर व्यंग भरा था, उसे लक्ष्य करके भी ज्योति ने टला दिया। वह अपने स्थान से हटे बगैर ही बोली, 'आप यदि यह नहीं चाहते कि इस स्थिति में कोई यहाँ हमें देखे, तो आपको यह लेना ही होगा। दान समझ कर मैं यह नहीं दे रही। न हो तो आप कर्ज समझ कर ही इसे ग्रहण कर लें।'

'इतनी सामर्थ्य मुझमें नहीं है, जो मैं यह कर्ज चुका सकूँ, अभी तो कई बड़े-बड़े कर्ज मेरे सिर पर हैं' कह कर अजीत ज्योति का रास्ता काट तेजी से चला आया। कुछ देर ज्योति वहीं खड़ी रही, फिर वह भी घर आकर विना किसी से कोई बात कहे सो गई।

इतनी देर के बाद अजीत जब घर पहुँचा तो, बाहर से ही कमरे में कुछ अधिक लोगों को इकट्ठा हुआ देख, एक अज्ञात आशंका से वह सिहर उठा। तेजी से कदम रखते हुए वह घर पहुँचा तो राजो के भापे ने भरे हुए स्वर में कहा 'बेटा ! इतनी देर कहाँ रहा ? मुलखराज अभी-अभी चले गये हैं।'

'कहाँ ?······कहाँ चले गये हैं ?' कह, जोर से चिल्लाते हुए अजीत अपने पिता की मृत देह पर कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़ा। बच्चों के समान स्वर में वह फूट-फूट कर रो पड़ा 'बाबू जी ! बाबू जी ! ···मैं आ गया हूँ—बोलते क्यों नहीं !'

चारपाई के चौगिर्द काफी लोग जमा हो गये थे, उनमें से कुछ अजीत को देख दया से द्रवित हो उठे थे और कोई मृत की पूर्व घटनाओं का हवाला दे आपस में धीमे से बातें कर रहे थे। कुछ ही देर में गाँव की कई औरतें भी आ गईं। रस्म के तौर पर स्यापे का नाटक शुरू हो गया। जिन्होंने जीते जी कभी सतवन्ती के मरने के बाद मुलखराज की सूरत भी न देखी थी, वे दोनों हाथों से सर ढाँपे

स्यापा कर रही थीं। उनकी आँखों से बेभाव के आँसू गिर रहे थे, और वे कभी-कभी हाथों से तालियाँ बजाती जातीं—गले की आवाज को क्षण भर में ऊँची और क्षण भर को नीची करतीं और फिर सब के स्वर मिलकर एक हो उठते। उस सम्मिलित स्वर के बीच कभी किसी वृद्धा का मोटा स्वर पृथक सुनाई दे जाता और फिर कोरस के समान सभी उस मोटे स्वर का साथ देतीं। उधर अजीत का बुरा हाल था। उसकी आँखों में रोते-रोते एक भी आँसू शेष न बचा था, किन्तु उसका अन्तर अभी भी रोना चाहता था।

उसे चुप न होते देख कर एक वृद्ध आगे आये, उन्होंने उसे शव से छुड़ाने की चेष्टा कर, धैर्य दिलाते हुए कहा 'बेटा, बस कर अब। आई को कौन रोक सकता है ··सभी ने एक दिन जाना है—उठ अब देर न कर। आखिरी कर्म भी तो करना है···।'

अजीत ने कुछ न कहा, वह उसी प्रकार मृत पिता के शव से चिपटा रोता रहा, तब राजो के भाई ने उसे प्यार से पुचकारते हुए कहा, 'उठ बेटा उठ। देख दिलेर बना करते हैं······अब जो होना था हो गया' अजीत सिसकियाँ लेता हुआ उनकी छाती में मुंह छुपाये खड़ा रहा।

किसी ने फिर कहा 'कोई चरणदास को बुला लाओ······कोई कफन-काठी के लिए दौड़ जाओ ·····।'

हठात् कड़े से स्वर में अजीत बोल उठा 'क्यों, क्या चरणदास के आये बिना पिता जी को स्वर्ग का रास्ता नहीं मिल सकेगा?'

'ऐसे वखत में यों नहीं, कहा जाता' एक अन्य पड़ोसी ने कहा मुलखराज के प्राण यही कहते निकले हैं, कि चरणदास जब तक कन्धा लगाने न आयें, अर्थी न उठे।'

अजीत इसके बाद कुछ न बोला। उसके यंत्रचालित से हाथ, कुर्ते की जेब में चले गये और मुट्ठियों भींचे वह नोट बाहर निकल आये। वे पचास रुपये कफन आदि के लिए राजो के भाई के हाथ में

चुपचाप उसने रख दिये। तुरन्त एक आदमी कफन आदि का समान लेने और दूसरा चरणदास को बुलवाने भेज दिया गया।

कुछ देर में चरणदास भी आ गये। लोगों ने उन्हें जब यह बताया कि मुलखराज आखिरी दम तक उन्हीं का नाम लेते रहे तो क्षण भर के लिए चरणदास के चेहरे पर एक अजीब प्रकार का परिवर्तन दिखाई दिया। उन्हें अपनी मित्रता के पूर्व दिनों की स्मृति कहीं दूर खींच कर ले गई। जिसने भी उनके चेहरे को गम्भीरता के साथ देखा उनसे वे दो बूंद आँसू न छिप सके जो चरणदास की आँखों से बह कर मुलखराज की निर्जीव काया पर गिर पड़े थे। रुँधे गले से शव पर झुके वे धीरे से बुदबुदाये 'मुलखराज! वे तूँ मैंनूँ माफ कर देईं—तेरे वगां इन्सान हार के वी जित जांदा ए...।'

कुछ लोगों को यह सब नाटक सा लगा। कुछ ने इसे लोकदिखावा मात्र समझा और अजीत ने इसे एक मजाक से अधिक महत्ता नहीं दी, किन्तु जिन्होंने ऐसा सोचा वह सामान्य बुद्धि से ही सोचा। मनुष्य कभी मरा नहीं करता। उसकी हाड़-मांस की देह नष्ट हो जाती है, यह सभी सत्य है किन्तु आत्मा अमर है। कभी-कभी मनुष्य की आत्मा भी रोगग्रस्त हो जाती है, वह स्वार्थ में डूब कर अच्छा भला सभी भूल जाता है, लेकिन उसके अन्तर का पहरेदार उसे जगाकर सावधान करता रहता है, समय आने पर सदा के लिए न सही, पर कुछ क्षणों के लिए उसकी मोहनिद्रा टूट ही जाती है, जैसे चरणदास की टूट गई थी।

चरणदास को जब अपनी मानसिक अवस्था का चेत हुआ, उसने एक लड़के को बुलाकर कर कहा :—

'बेटा हरनाम! जा भाज के मेरे घर तों मेरी नवी शाल ते मांग ला। कुड़ी नूँ कईं सूटकेस तों कढ देगी।'

वह लड़का चल दिया। उधर औरतों का आना जारी रहा—स्यापे का स्वर तीव्र हो उठा। खबर सुन सत्यवती भी आ गई। उसने आते ही, एक ओर को खड़े अजीत को अपनी ओर खींच लिया। उसे दोनों

बाहुओं में भर वह रो उठी। अजीत से भी न रहा गया, एक बार अनायास ही पुनः वह बच्चों के समान रो उठा। उसके आँसू पोंछते हुए सत्यवती ने कहा, 'हुण सयाणा हो गया काके! बेटा, इस तरां नई रोईदा! उठ पुत्रा, उठ'''।'

सत्यवती उसे समझाकर औरतों के समूह में जा बैठी; रोना-धोना जारी रहा।

इधर चरणदास ने शव का सिर हाथों में ले नीचे कुशासन पर लिटाया। कपड़े की आड़ कर शव को स्नान कराया गया। मुलखराज आर्य समाजी थे, इस कारण एक आर्य समाजी पण्डित ने श्लोक पढ़ने प्रारम्भ कर दिये। लगभग आधा-पौन घण्टा शव स्नान में लग गया। घर के बाहर काठी तय्यार हो रही थी, उस पर यत्न से शव लिटा दिया गया। कफन आदि उढ़ाने के बाद चरणदास ने घर से मगाया अपना नया शाल निष्ठा से शव को उढ़ाते हुए कहा, 'जा भय्या! जीते जी न उढ़ा सका''''''।'

और कुछ ही देर में सर घुटाये अजीत ने पिता की अर्थी में कन्धा दिया। दूसरा भाग चरणदास ने उठाया और चल पड़ा जलूस उस महान विश्रामस्थल की ओर जहाँ बड़े-बड़े मनीषी सुख की नींद सो रहे हैं। जहाँ कोई किसी का शत्रु नहीं, मित्र नहीं, जहाँ केवल शान्ति ही शान्ति है। जहाँ मातृभूमि का निरीह पौधा रूपी मानव अपने पूर्वतत्व में विलीन हो जाता है।

चिता में अग्नि देते हुए अजीत ने चार आँसू ढलका दिये। इतने वर्षों के रिश्ते की समाप्ति होते देख मन ही मन उसने कहा 'तुम चले गए बाबू जी? अच्छा हुआ। जहाँ लोग किसी का इज्जत से रहना भी सहन नहीं कर सकते, वहाँ न रहना ही अच्छा है...कोशिश करूँगा, तुम्हारे बाग में तुम्हारी हड्डियों की नींव पर बना जो स्कूल अन्तिम दिन गिन रहा है, उसे नया रूप दे दूं'''

चिता ने क्रमशः आग पकड़ ली और वह तेज होती गई।

५

जीवन एक ऐसा प्याला है, जिसमें विष और अमृत दोनों ही पिये जाते हैं। जान बूझ कर विष प्रत्येक व्यक्ति पीना चाहता है ऐसी बात नहीं, किंतु जिनके अन्तर में दुःखों ने अपना घर बना लिया है, वे जानबूझ कर ऐसा रास्ता चुन लेते हैं। वे एक ऐसी धारणा बना लेते हैं कि दुःख एक जैसे हैं, यातनायें एक जैसी हैं, उनके रूपों में भिन्नता अवश्य है, फिर उनसे क्यों डरा जाये ? क्यों उनसे हार मानी जाये। ऐसे लोग जीवन को विष की कड़वी घूंट सदृश मानते हैं और वह उन्हें कड़वी लगती है ऐसी बात नहीं, बल्कि अपने उत्साह में वह कड़वाहट उन्हें मालूम नहीं पड़ती। संक्षेप में वे एक ऐसे आदमी बन जाते हैं, जो जीते तो हैं, पर उन्हें स्वयं को यह पता नहीं होता कि जीने और न जीने में क्या अन्तर है, वे तो बस चल रहे हैं।

पिता की मृत्यु के बाद अजीत स्वयं को एक ऐसे पथ का पथिक समझने लगा था, जिसका कहीं अन्त नहीं है, एक प्रकार से वह निरुद्देश्य सा हो गया था। स्कूल में वह जाता किन्तु वहाँ भी बच्चों के बीच उसका मन नहीं लगता। उसमें अब पहले वाली वह बात न रह गई थी, वह बिलकुल बदल गया था।

एक दिन दोपहर को वह जब अपने को अत्यधिक थका हुआ अनुभव कर रहा था तो उसने सब लड़कों से कहा, 'मैं चाहता तो नहीं था, किन्तु ऐसे कब तक जियूँगा—इसलिए कल से तुम लोग स्कूल न आना। मैं कहीं बाहर जा रहा हूँ।'

यद्यपि उसकी मुखाकृति इतनी विषादपूर्ण थी कि उससे कुछ पूछने का साहस किसी को न हुआ फिर भी एक लड़के ने उससे कारण पूछा

तो उसने साफ कह दिया, 'मेरे पास कुछ नहीं है भय्या। कहीं जाकर जीने का सहारा बनाऊंगा।'

उसी दिन यह बात सारे गाँव में फैल गई कि अजीत अब गाँव छोड़ कर कहीं जा रहा है। कई लोग उसके घर आये, जिनमें कई औरतें भी थीं। उनमें से कुछ ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की। कुछ ने गाँव छोड़ने की बात को अच्छा न बताया, कुछ ने उसका समर्थन भी किया और कहा, 'पढ़ लिख कर गाँव में कब तक यों रहेगा, अच्छा है कहीं नौकरी तो करेगा।' लेकिन कई बड़े-बूढ़ों ने उसे मुलखराज की याद दिलाते हुए कहा, 'वह तो योगी थे, अपना सब कुछ चढ़ा कर भी निःस्वार्थ भाव से गाँव के गरीब बच्चों का साथ न छोड़ा, तुम अपने बाप की आखिरी इच्छा को नहीं समझ सके ?'

अजीत ने हृदय में दबा सारा रोष उगलते हुए कहा, 'हमारी जाति में जीते को लोग पानी के लिए भी नहीं पूछते। मरे के गुण गाना उन्हें बहुत सुहाता है जिनकी अंतिम इच्छा की आप सब दोहाई देते फिरते हैं, शायद उन्हें यह पता नहीं कि उनकी दो रोटियों का सहारा भी उनके अपनों ने ही छीन लिया। जिनको आप सब योगी कहते हैं, उनका कफन मैंने घड़ी बेच कर इसी गाँव में खरीदा है, जो इतने निःस्वार्थ थे उनके सपनों के बाग को इसी गाँव में चीर कर दो हिस्से कर डाले गये. उनको खाने के लाले पड़े रहे, पर उनकी रोटियाँ भी गाँव ने छीन ली। वहीं आप कहते हैं, मैं भी कीड़े की मौत मरूँ ? नहीं मै ऐसे कर्तव्य का कायल नहीं हूँ। मैं यहां अब न रह सकूँगा!'

उसकी खरी-खरी बातों का किसी के पास कोई जवाब न था। सामने वे उसका क्या उत्तर देते, पर उसकी उन बातों को रंगीन करके उड़ाने में किसी ने कोई कोर कसर उठा न रखी।

शाम को चरणदास उससे मिलने आये। उन्होंने अपने और मुलखराज के सम्बन्धों का वास्ता दिलाते हुए अजीत से कहा, 'वैसे तो मैं तुम्हें रोकने वाला कोई नहीं हूँ, पर इतना कहने का मुझे हक है कि

गाँव छोड़ कर तुम्हारे जाने का विचार ठीक नहीं है। मैं मानता हूँ कि मैंने भी अच्छा नहीं किया, पर मैं सांसारिक आदमी हूँ। आज यही जान कर तुम्हें यह घड़ी लौटा रहा हूँ।' यह कह उन्होंने जेब से घड़ी निकाल कर अजीत के सामने रख दी।

अजीत ने कहा, 'आपकी सलाह के लिये किस मुँह से आपको धन्यवाद दूँ चाचा जी ! पर मुझे यहाँ से जाना ही होगा। आपको पता ही है, मेरे कुल खेत गिर्वी पड़े हैं। मेरी माँ कहा करती थी यह खेत और इनकी मिट्टी उसकी इज्जत है। भला अपनी माँ की इज्जत कौन बेटा रहन रखना सहन करेगा। मुझे उन्हें छुड़ाना है...और' वह कुछ कहने हो जा रहा था कि जैसे उसकी जबान को किसी ने रोक लिया हो, हठात् वह वहीं रुक गया पर चरणदास उस बात को तुरन्त ही समझ गये। उन्होंने उसकी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, 'मैं समझ गया। तुम शायद उस बाग के बारे में कह रहे हो, जिसका एक हिस्सा मेरे पास है...उसके लिये मैं मजबूर हूँ बेटा ! वह तो पटवारी एक बार जो कर गया सो कर गया। तुमसे अब क्या छिपाऊँ।' उन्होंने आत्मीयता जताते हुए कहा, 'अब कागज में अदल-बदल करने से मुझ पर भी आँच आ सकती है। रहा सवाल तुम्हारी रोटी-रोजी का, सो तुम यकीन जानो उसका जिम्मा मैं अपने ऊपर लेता हूँ।'

'आप क्या जिम्मा लेते हैं' अजीत ने जोर से पूछा, 'जब आप लोग मेरा हक दबा कर भी उसे सदा के लिये पचा जाना चाहते हैं। आखिर सुनूँ तो ?'

चरणदास उत्तेजित न हुए। उन्होंने सहज भाव से उत्तर देते हुए कहा, 'अरे जब तुम गाँव के लड़कों को पढ़ाने में अपना वक्त लगाते हो तब क्या गाँव का इतना भी फर्ज नहीं कि तुम्हें खाने की किल्लत न होने दी जाय। जितने घर यहाँ हैं अगर फसल के साथ एक घड़ी गेहूँ भी घर बार तुम्हारे नाम का जमा हो, तब भी तुम्हारे साथ दस आदमियों का और पूरा पड़ जायगा। रही यह सब करने की बात सो

वह मैं खुद देख लूँगा ।'

अजीत को लगा जैसे यह उसका अपमान करने सदृश बात है । वह आज सबकी नजरों में इतना दीन है कि अब उसे उनकी दया पर जीना होगा ; उसका जी चाहा कि उन लोगों का वह गला दबा दे जो उसे दीन बनाकर इस प्रकार उसके आत्माभिमान को रौंदने पर तुले हैं किन्तु चाहकर भी वह ऐसा कुछ न कर सका । उसने अपने आप पूर्णतः संयमित होकर उत्तर दिया, 'मैं इसी गाँव में जन्मा हूँ चाचा जी ! शायद आप यह बात भूल गये हैं कि मैं भी उसी बाप का बेटा हूँ जिसने इस गाँव का कुछ लिया नहीं, इसे जो बन पड़ा, दिया ही है । स्वयं दुःख सहकर भी उन्होंने यहाँ शिक्षा दान किया है । मरणासन्न होने पर भी किसी के आगे हाथ पसारने न गये । आपको ऐसी बातें कहने से पहले कुछ तो सोचना था । आपने जो दया दिखाई उसके लिये आपका धन्यवाद ! घर-घर से आटा जमा करके जीवन धारण करने का जब समय आयेगा उससे पूर्व ही इस संसार से उठ जाना मैं स्वीकार करूँगा ।'

'अब मैं क्या कहूँ अजीत !' चरणदास ने अपनी खीझ मिटाते हुए कहा । फिर जब वे जाने लगे तो चलती बार बोले, 'यह घड़ी उठा लेना और अगर मुझे इस लायक समझो तो जो चाहो माँग सकते हो ।'

अजीत ने घड़ी उठाते हुए कहा, 'चाचा जी इसे मैं न रख सकूँगा । मेरे पास आपको लौटाने के लिये अभी पचास रुपये नहीं हैं । जब होंगे तब छुड़ा ले जाऊँगा । और सब आपकी दया चाहिये ।'

चरणदास ने कहा, 'वह मेरा दोस्त था, इसलिये उसके क्रिया-करम में लगे पैसे वापस करने का तुम्हें कोई हक नहीं । इसे तुम रखो ।'

'नहीं चाचा जी, इसे मैं न रखूँगा ।' कह अजीत ने घड़ी चरणदास के कोट की जेब में डाल दी । बहुत कहने-सुनने पर भी वह न माना । अन्ततः चरणदास चले गये । दरवाजे को अध-मुँदा छोड़ अजीत बैठा कुछ सोचने लगा ।

तब शाम होने जा रही थी । वह उठा, पैरों में चप्पल डाले और

बाग की ओर चल पड़ा। बाहर पड़े चाक बोर्ड, उठाकर उसने स्कूल की जीर्ण शीर्ण कोठरी में रख दिये—एक-दो अधटूटी चारपाइयाँ थीं, उन्हें भी उसने भीतर रख दिया। एक पुरानी सी कुर्सी, जो कई स्थान से टूटी होने के कारण अष्टावक्र की भाँति टेढ़ी-मेढ़ी थी, उसने उठाकर उसी कोठरी में डाल दी। फिर बाहर से उसका ताला लगा वह बाग के ही एक सिरे पर बैठ गया। उस समय शाम हो गई थी। चिड़ियाँ चह-चहाती हुई पेड़ों पर बैठी थीं, सूर्य की लालिमा पश्चिम में निशा के आगमन की सूचना दे रही थी। दिन भर के थके किसान हलों को कन्धों पर लिये बैलों को विश्राम देने घरों को लौट रहे थे। कुओं पर चरखियाँ घूमकर घरड़-घरड़ करती न जाने कितना पानी खींच रही थीं। पानी खींचती हुई तरुणियों की सुमधुर ध्वनि जैसे अन्धकार भरी निशा को आमन्त्रित कर रही थी।

ऐसे में गाँव से बाहर बैठा अजीत अपने अतीत के स्वप्न देख रहा था। तभी पास वाले भाग से ज्योति को आते देख वह कुछ समझने की चेष्टा करने लगा। उसे गाँव की हवा से भी अब आत्मीयता न थी किन्तु फिर भी इस लड़की के प्रति वह चाहकर भी अनात्मीय भाव न दिखा सका। इतने विरोधी वातावरण में रहने पर भी ज्योति की आत्मीयता की बात उसे स्मरण हो आई। भले ही वह हठ वश उसकी किसी भी सहानुभूति को ग्रहण करने में समर्थ न हो सका फिर भी वह यह न भुला सका कि उस सहानुभूति में संवेदना की मात्रा अधिक है।

उसने ज्योति को देख गर्दन नीचे झुका ली, और ऐसा भाव व्यक्त किया जैसे उसके आने का उसे तनिक भी ज्ञान न हो। जब पास आकर वह बैठ गई तब उसने अनमने भाव से उसकी ओर दृष्टिपात किया।

ज्योति ने चुप्पी भंग करते हुए धीरे से पूछा—

'सुना है आप गाँव छोड़कर जा रहे हैं?'

'आपने ठीक ही सुना।' अजीत ने कहा, 'मैं हो सका तो कल ही चला जाऊँगा।'

ज्योति ने आत्मीयता भरे स्वर में पूछा, 'क्यों जा रहे हैं आप यहाँ से ?'

'यों ही ।' अजीत ने उत्तर दिया ।

'कहाँ जायेंगे ?'

'इस बारे में अभी सोच नहीं पाया हूँ ।'

'मैं आपको जाने से रोकती नहीं' ज्योति ने ऐसे भाव से कहा जैसे वह उसकी बहुत बड़ी हितेच्छुक बन कर आई हो 'पर'···वह बोली 'पर इससे आप इनकार न कीजियेगा । परदेस में यह बहुत बड़ा सहारा आपको देगी' उसने अपनी बात समाप्त होने से पूर्व वह लिफाफा अजीत की ओर बढ़ा दिया, जो कुछ दिन पूर्व उसने अजीत को देना चाहा था ।

अजीत ने प्रतिवाद करते हुए कहा, 'नहीं, यह रखिये । जाने के लिये मेरे पास रुपये हैं ।'

'देखिये, मुझे सब पता है, ऐसा कहकर आप मुझे टाल न सकेंगे' ज्योति ने कहा, 'बाबूजी पर आपका क्रोध है वह आप मुझ पर क्यों उतार रहे हैं । इसे रख लीजिये, यह जो कुछ है, पूर्णतः मेरा है ।'

अजीत ने कहा, 'आपका ही है, इससे मैं कब इनकार करता हूँ, लेकिन किसी की भी सहायता स्वीकार न करने का जो मेरा मत है वह आपके ही लिये बदल जायगा, ऐसी बात नहीं । मैं सहायता लेना ही चाहूँ तो किसी से भी ले सकता हूँ, आपही से लूँ इसमें क्या कोई विशेष बात है ?' इस बात का अर्थ जो हो सकता था उसको समझ ज्योति मन-ही-मन लज्जित हो गई । उसे सूझ नहीं सका कि वह क्या उत्तर दे किन्तु उसने ऐसा कोई भाव व्यक्त न होने दिया जिससे अजीत पर यह बात प्रकट हो सके । वह सरल भाव से बोली—

'औरों ने जिस भाव से आपकी सहायता करनी चाही उसके मूल में भले ही कुछ रहा हो किन्तु प्रगट में वह एक ऐसी बात थी जैसे अपने से किसी हीन पर तरस खाकर उसे कुछ रोटी के टुकड़े दे दिये, जायें किन्तु मैं तो ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकती । मैं तो आपको दान नहीं दे

रही, आप ही का समझ कर दे रही हूँ।'

अजीत को अपना तर्क बुरा न लगा किन्तु फिर भी उसने कहा, 'मेरा ही समझ कर आप जो मुझे देने जा रही हैं, वह तो इतना अधिक है कि यह उसका सौवां भाग भी नहीं है।'

'आप विस्तृत रूप में बताइये' ज्योति ने दृढ़ होकर कहा, 'मैं कोई चेष्टा उठा न रखूँगी। आपका जो है, वह आपका ही होगा।'

अजीत हँस पड़ा। उसकी हँसी में व्यंग्य छिपा था। उसी मुद्रा में उसने कहा, 'अब क्या आप यह कहती हैं कि मैं डौंडी पीटूँ और कहूँ कि यह मेरा है ?'

'क्या हर्ज है !' ज्योति ने कहा, 'आपका क्या है, पता तो चलना ही चाहिये !'

अजीत ने कहा, 'उनकी अब मैंने आशा छोड़ दी है, इसीलिये नहीं कहूँगा।'

ज्योति ने तनिक ऊँचे स्वर में कहा, 'तो फिर आपको दावा करने का कोई अधिकार नहीं। मैं तो यहाँ तक कहूँगी कि आप भीरु हैं। इतना पढ़ लिख कर भी आप···'

उसकी बात को बीच में ही काटकर अजीत ने कहा, 'आपका आरोप गलत है। मैं भीरु नहीं हूँ। रही बात अपना अधिकार जताने की, उसे मैं इसलिये प्रकट नहीं कर रहा कि आप सुनकर कुछ उत्तर न दे सकेंगी। यदि इतने पर भी जानना चाहें तो मैं इनकार न करूँगा।'

'हाँ, मैं जानना चाहूँगी' दृढ़ स्वर में ज्योति ने कहा।

'तो सुनिये' अजीत ने गम्भीर होकर कहा—'आप मेरी हैं···आप पर मैं दावा करता हूँ···जमीन के बारे में तो आप जानती ही हैं।' बात समाप्त कर काष्ठ प्रतिमा सदृश स्तब्ध हो गई ज्योति की ओर देख उसने फिर कहा, 'कहिये, है कोई उत्तर आपके पास ?'

ज्योति शरमा गई थी। अजीत की बात का वास्तविक अर्थ वह न समझ सकी थी बल्कि उसने कुछ और ही समझ लिया था, फिर भी उसने

भरसक उसकी बात का उत्तर दिया, 'यह तो मान न मान मैं तेरा मेह-मान' वाली बात हो गई। इस दावे का आधार ही मैं न समझ सकी।'

'आधार ?' अजीत ने तनिक व्यंग्य के भाव में कहा—'आधार के बारे में अगर आप चरणदास जी से या चाचीजी से पूछें तो आपको कोई शंका न रहेगी और यदि आप में इतना नैतिक साहस हो तो आप गाँव में किसी से भी पूछ सकती हैं। मैं समझता हूँ, आपको छोड़कर सभी जानते हैं कि मेरा अधिकार कितना ठोस है।' तनिक ठहर कर ज्योति के चेहरे पर अपनी बात के प्रभाव को आँकने का प्रयास कर उसने पुनः कहा, 'आश्चर्य है; आपसे यह बात कैसे छिपी रह गई !!'

विस्मित हो ज्योति ने पूछा, 'आप कहना क्या चाहते हैं ?' मैं यह नहीं जानती थी कि आप बाहर से जितने भोले बनने की चेष्टा करते हैं, भीतर से वह बात नहीं है···' उसका मुख-मंडल क्रोध से प्रकंपित होने लगा था। अँधकार की हलकी-सी चादर चारों ओर आच्छादित हो जाने पर भी, धुंधले से प्रकाश में उसके मुख पर पल-प्रतिपल उठने वाली क्रोधलहरियों को कोई भी लक्ष्य कर सकता था। अपने मौन को भंग करते हुए उसने पुनः कहा, 'किसी की सहानुभूति का यह अनुचित लाभ नहीं तो और क्या है ? मैं पूछती हूँ आपके इस दावे को यदि उच्छृं-खलता कहा जाय तो इसमें कोई बुरी बात न होगी।'

अजीत ने ज्योति की बात से क्रोधित हो अपना विवेक तोड़ना उचित न समझा, वल्कि अत्यन्त ही संयमित हो उसने उत्तर दिया, 'आपके समान मैं अपना विवेक इतनी शीघ्रता से खोना न चाहूँगा किन्तु यह बता देना ठीक समझूँगा कि आपने मेरी बात का जो अर्थ लगाया है वह अनर्थ-पूर्ण है। मैं किसी भी ऐसी कलुषपूर्ण भावना को अपने हृदय में कभी स्थान देना भी उतना बुरा समझता हूँ जितना उस विचार को कार्यरूप देना बुरा हो सकता है। आपने तनिक भी स्थिरता से विचार न कर जो जघन्य लांछन मुझ पर लगा दिये हैं, उनके लिए भी मैं आपसे कुछ कहना नहीं चाहता। हाँ उस बात को जब प्रकट कर ही बैठा हूँ तो यह और

आपको बता दूँ कि आप पर मेरा दावा उतना ही जायज है, जितना शास्त्रोक्त रीति से विवाहिता वधु पर उसके पति का हो सकता है।'

कुछ ठहर कर पुनः उसने कहना प्रारम्भ किया, 'जब हम दोनों में से एक का भी जन्म नहीं हुआ था, तब एक दिन इसी बाग में मेरे पिताजी और आपके पिताजी ने एक संकल्प किया था और उस संकल्प के अनुसार आप मेरी वाग्दत्ता हैं।'

ज्योति ने गर्दन नीची कर ली थी। एक तो वह बिना पूरी बात जाने कुछ कड़े शब्दों का प्रयोग कर बैठी थी। दूसरे उसने जो लांछन अजीत पर लगाये थे, उनको सुन कर भी अजीत ने जिस विवेक से उसका उत्तर दिया था, इससे वह मन-ही-मन पश्चात्ताप कर रही थी। प्रकट में वह क्या कह सकती थी, फिर भी उत्तर तो उसने देना ही था अतः केवल हार-जीत के ही लिए वाद-विवाद को बढ़ाने सदृश ज्योति ने कहा, 'यह तो हँसी की-सी बात है। आज के इस युग में कोई भी समझ-बूझ रखने वाला व्यक्ति आपकी बात पर हँसेगा नहीं तो निश्चय ही वह यह अवश्य कहेगा कि इतनी बड़ी डिग्री लेकर भी आप कोरे आदर्शवादी ही रह गये।'

अजीत ने कहा, 'वास्तव में ऐसी ही बात है। कोई भी समझदार व्यक्ति इसे हँसी ही समझेगा ! मैं स्वयं भी इसे उसी रूप में लेता हूँ।' उसने बात में व्यंग्य कसते हुए पुनः कहा, 'आप तो जानती ही हैं कि जब मेरे पिताजी और आपके पिताजी के रिश्ते तय हुए तब वचनों ही में सब कुछ होता था, तब आज के समान छल-कपट न था, अब जबकि जमाना बदल गया तो भला ऐसी बात कोरी आदर्शवादिता ही तो समझी जायगी। जरा सोचिये तो, हमारे बड़े-बूढ़े कितने बड़े मूर्ख थे ! आपकी बात का मैं पूर्णतः समर्थन करता हूँ, इसीलिए तो मैंने आज तक यह बात किसी से न कही।'

ज्योति अजीत के व्यंग्यबाणों से मन-ही-मन मर्माहत सी हो उठी थी। वह भरसक चाहती थी कि अजीत के प्रति वह समवेदना प्रकट करे, गाँव के लोगों ने, स्वयं उसके पिता ने उसके प्रति जो व्यवहार

किया उसके लिये वह अजीत से कहे कि 'निर्दोष व्यक्ति सदा ही सताया जाता है, यह जान आप स्वयं को इस योग्य ढालने की चेष्टा करें कि इन सब बाधाओं को चीरते हुए आप अपने मार्ग पर बढ़े चलें, किन्तु वह यह भावना कैसे व्यक्त कर सकती थी। स्त्री और पुरुष के बीच यहाँ कितनी दूरी है ? वे दो वर्ग एक दूसरे के अत्यधिक निकट होते हुए भी सामान्यतः कितने दूर एक दूसरे से हैं—यही तो थी वह द्विविधा जिसमें ज्योति डूब उतरा-सी रही थी। फिर भी आज वह एक बात जान गई कि जिस व्यक्ति के प्रति उसके हृदय ने मौन गवाही दे दी थी कि वह कुछ भी हो, किन्तु अन्याय के समक्ष झुकने की प्रवृत्ति उसकी नहीं है—और फिर सहज ही वह उसके प्रति आकर्षित हो गई थी। अपने हृदय की समस्त सहानुभूति वह उसे दे बैठी थी। इस पर भी यह सहानुभूति और यह आकर्षण ऐसा ही था जैसे उसका स्वरूप साधारण हो। किन्तु आज जो बात स्पष्ट हो गई थी उसने ज्योति को यह सोचने पर बाध्य कर दिया कि जिस बात का बाह्य रूप से वह परिहास कर रही है, आज का युग जिस बात को उचित नहीं मानता वह उसका बाहरी स्वरूप है। हृदय की भावनाएँ ऐसा कभी नहीं कहतीं कि यह परिहास उचित है। किन्तु मन द्वारा उसी बात का समर्थन किये जाने के पश्चात् भी, आज लोग उसी का परित्याग कर देते हैं। मन-ही-मन ज्योति ने कहा, 'क्या स्वयं उस पर यह बात लागू नहीं होती ? यदि होती है तो फिर वह सत्य का अनुमोदन क्यों नहीं कर पाती ?'

इतने थोड़े ही समय में एक साथ ही न जाने कितने विचारों ने उस पर आक्रमण-सा कर दिया और उससे लाख प्रयास करने पर भी वह पार न पा सकी। हार कर उसने विचार शृंखला को भंग कर दिया।

उसे चुप देख कर अजीत ने कहा—

'मेरी राय से आपको अब वापस लौट जाना चाहिए। रात हो रही है।'

ज्योति इस बात पर मौन रही, किन्तु उठने की चेष्टा करने का अभिनय सा करते हुए उसने पूछा, 'तो क्या आप जा ही रहे हैं ?'

'हाँ !'

'तो फिर यह ले लें !'

'मैं आप से कह चुका हूँ न, कि यह लेने में मैं असमर्थ हूँ ।'

ज्योति ने विनयपूर्ण स्वर में कहा, 'इस बार आप इन्कार न करें। मैं कहती हूँ, आप किसी और से ऋण न लें मुझसे ही ले लें तो कोई अनुचित बात नहीं' कुछ पल चुप रह अत्यन्त ही अस्पष्ट स्वर में उसने सर नीचे कर कहा, 'मुझे कहना तो नहीं चाहिये पर आपकी जिद को देख कर…मुझे…कहना ही पड़ रहा है'…'जब आप मुझ पर अपना दावा जताते हैं तो यही जान कर इस छोटी-सी भेंट को ग्रहण कर लीजिये कि जिस पर आपका अधिकार है उसके पास जो कुछ है उस पर भी तो……' इसके आगे वह चुप हो गई।

अजीत एक रूखी सी हँसी हँसते हुए बोला, 'आपका साहस प्रसंशनीय है, फिर भी इस समय मैं ना ही कहूँगा। यदि आपको मेरे प्रति वास्तव में सहानुभूति है तो आप मुझे बाध्य न करें।'

ज्योति ने रोष प्रकट कर कहा, 'बेंत के वृक्ष को झुका कर मोड़ने में सभी अपने को बलशाली समझते हैं—लगता है आप भी उन्हीं में से हैं। मेरी प्रार्थना आपने ठुकरा कर ठीक नहीं किया…अब याद रखें भविष्य में कहीं भी आपको सहानुभूति न मिल सकेगी !' उसका गला कुछ भारी सा हो गया था और उसी प्रकार वह उठ खड़ी हुई।

अजीत धीमे से अंधकार में क्रमशः लुप्त होती जा रही उस छाया को अन्यमनस्क सा देखता रहा। उसके अन्तर में कुछ ही देर में न जाने कितने विचार प्रवाह उठे और फिर वह वैसे ही शान्त हो गये जैसे उठती हुई आग में रेत डाल कर उसे दबा दिया गया हो। न जाने कब तक वह उसी प्रकार शान्त हो बैठा रहा, जब उसने देखा अंधकार ने बढ़कर सारे क्षेत्र को अपने में समेट लिया है, तो उठ कर भारी पैरों से वह घर आकर सो गया।

६

अगले दिन गाँव में जब लोग जागे तो अजीत के घर में एक बड़ा-सा ताला पड़े देख लोगों को यह समझते देर न लगी कि वह गाँव छोड़कर कहीं चला गया है। सम्भव है उसके जाने का किसी को दुःख भी हुआ होगा किन्तु किसी ने शब्दों में उसे प्रकट न किया। कई दिनों तक सामान्य रूप से गाँव में अजीत की चर्चा होती रही और फिर समय के धुंधले बादलों में उसकी याद भी धूमिल पड़ती गई।

उसे गये एक वर्ष बीत चुका था और यह एक वर्ष ही इतनी द्रुति-गति से कालान्तर को काटता गया कि माहेवाल गाँव की काया बदल गई। लोगों के पहनावे बदल गये, रहन-सहन बदल गये—इससे भी बढ़ कर लोगों के ईमान बदल गये।

गाँव का पटवारी लद्दाराम आज जितनी शान इस इलाके में रखता है, उतनी देशभक्तों को पचास बार जेल जाने पर भी नसीब न हुई। जिन्होंने लद्दाराम को शुरू-शुरू में देखा है वे अब भी कहने से नहीं चूकते—"अन्ने हाथ बटेर"—अर्थात् अन्धे के हाथ बटेर लग गई। उसने विभाजन के बाद अपनी तीन मंजिल की पक्की हवेली खड़ी कर ली है और आठों पहर उसकी बैठक में गाँव के बड़े लोगों के कहकहे गूँजते हैं। जवानी में ही विधुर हो गया और फिर पैसा उसको इतना प्यारा हो गया कि दूसरा विवाह रचाने की कभी कल्पना ही उसने न की। उसकी इस साधना का फल यह तीन मंजिली हवेली है और ब्याज पर दिया वह हजारों रुपया है जो अपनी जगह पर बैठा-बैठा लद्दाराम पटवारी की जायदाद में वृद्धि करता जा रहा है। बहुत दिनों से वह चरणदास से ज्योति के लिए लड़का ढूँढ़ने की बात कर रहा था, इस बार जब चरण-दास ने जोर दिया तो उसने जालन्धर से अपने मित्र के पुत्र देवेन्द्र को

अपने घर बुलवाया। देवेन्द्र उसके मित्र का लड़का है। लद्दाराम ने देवेन्द्र के पिता से बार-बार यह कहा कि वे कुछ संचय करें—पैसा होगा तो सभी कुछ है, पैसे के बिना कौन किसके दुःख-सुख में काम आता है, परन्तु उन्होंने लद्दाराम की बात को सदा ही हँसी के ठहाकों में उड़ा दिया और एक दिन वे जब संसार से विदा हुए तो उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिये लद्दाराम को देवेन्द्र का तार पाकर जालन्धर आना पड़ा। उन्होंने देवेन्द्र को धैर्य दिया, आगे बढ़ने की प्रेरणा दी और जाती दफा वही उपदेश भी दिया कि 'जीवन में पैसा ही काम आता है, यदि पैसा नहीं तो विपदकाल में कोई किसी का नहीं।' देवेन्द्र ने उनकी इस बात पर कहाँ तक गौर किया यह कहा नहीं जा सकता किन्तु आज वह काफी पढ़-लिख गया है। एक प्रकाशक के यहाँ काम भी करता है। संक्षेप में आज वह अपने पैरों पर खड़ा है। ज्यादा कमाने की ओर उसका ध्यान नहीं जाता, जितना कमा लेता है उसे शान के साथ खर्च कर देता है।

लद्दाराम ने उसे जब गाँव बुलवाया तब शादी-विवाह का कोई संकेत न किया। केवल यही लिखा कि कुछ दिनों के लिए मिल जाओ।

देवेन्द्र ने कुछ सोचा नहीं। लद्दाराम का पत्र पाते ही वह बारह दिन का अवकाश लेकर अमृतसर के लिये रवाना हो गया। जालन्धर कोई बड़ी चहल-पहल वाला शहर नहीं है। इतने दिनों से इस छोटे से नगर में रहकर स्वयं ही उसका मन उचाट-सा हो गया था। अतः उसने भी सोचा कि कुछ दिन गाँव की हवा ही मिलेगी। पटवारी लद्दाराम को वह चाचा कहा करता और यह बात नहीं कि वह उनसे केवल औप-चारिकता के नाते ही सम्बन्ध रखे था। वह जानता था कि लद्दाराम उसके पिता के बुरे दिनों के साथी हैं, इसीलिए उन्हें वह अपने सगे से अधिक समझता था।

जिस दिन वह माहेवाल पहुँचा पटवारी लद्दाराम उसे देख बड़े सन्तुष्ट हुए। वह अब पाँच फुट का तगड़ा, गोरे बदन का युवक बन चुका था। शिक्षित होकर उसकी व्यवहारपटुता में विलक्षण वृद्धि हो गई थी।

वह तीन-चार दिन तक कहीं न गया। पटवारीजी के पड़ौस की जीतो ब्राह्मणी दोनों समय खाना पका कर भेज देती और देवेन्द्र खा कर पटवारीजी के साथ बातें करता रहता।

चरणदासजी ने जब लड़के की बात सुनी तो वह एक दिन किसी बहाने पटवारी की हवेली में आकर बैठ गये। उन्होंने अपने ढंग से देवेन्द्र से कई बातें पूछीं। उसकी आदत पुरुषों से बात करने में इतनी भीरु न था जितनी कि औरतों से बात करने में। अतः उसने बड़े ही सन्तोषजनक ढंग से उनकी बातों का उत्तर दिया। जब वे जाने लगे तो दालान के बाहर खड़े पटवारी ने चरणदास के कान में धीरे से खुस-फुसाते हुए पूछा—

'कैसा है लड़का ?'

'लड़का तो बड़ा अच्छा है !'

'मैंने कहा था न पंडितजी !' अपनी तम्बाकू के धुंए से पीली पड़ गई मूँछों पर हाथ फेरते हुए पटवारी ने कहा, 'लड़का नहीं हीरा दूँगा।'

'हाँ, हाँ' चरणदास ने एक फीकी सी हँसी हँस कर उसकी बात का समर्थन किया और अगले दिन ज्योति की माँ के साथ आने का वादा करके वे घर चले आये।

पटवारीजी ने रात को देवेन्द्र से कहा, 'बेटा अब जल्दी तुमको दो पाया कर दूँगा। कल जरा अच्छे कपड़े पहन कर बैठना।'

वह कुछ-कुछ समझ रहा था, किन्तु स्पष्ट होकर पटवारीजी से पूछ भी नहीं सकता था, फिर भी उत्कंठा को न रोक पाने पर वह बोला, 'क्या बात चाचा ! मैं समझा नहीं।'

पटवारीजी हंस पड़े। उनकी जमानेसाज आँखें खिल गईं। उसी प्रकार हँसकर उन्होंने कहा, 'कल तक सब समझ जाओगे बेटा।'

दूसरे दिन सवेरे ही देवेन्द्र एक पुराना फिल्मी समाचारपत्र पढ़ रहा था। वह तब तक एक नेवार के पलंग पर पाँव लटकाये सिगरेट का धुंआँ उड़ा रहा था कि सत्यवती और चरणदास आ खड़े हुए। उसने

अखबार पढ़ते-पढ़ते दबी आंख से उनकी ओर देखा और ऐसा भाव व्यक्त किया जैसे उनके आने का उसे आभास नहीं है, वह बैठा रहा।

चरणदास ने गले को खंघार कर आवाज दी, 'भाई पटवारीजी!'

आखिर उसे उठना ही पड़ा। वह उठा और अदब से उसने चरणदास और सत्यवती का अभिवादन किया। सत्यवती ने नारी सुलभ स्नेह से अभिभूत हो उसे आशीष दी। उनको बैठने का संकेत कर देवेन्द्र ने कहा कि वे कहीं कुर्की पर गये हुए हैं। वह बीच-बीच में चरणदास और सत्यवती से बात करता जाता और अखबार पढ़ता जाता। अभी वे सब बैठे ही थे कि पटवारीजी आ गये। बड़े प्रेम से चरणदास से मिले और फिर पास बैठ गये। चरणदास ने कुछ देर चुप रहकर कहा, 'पटवारीजी सभी कुछ ठीक है और आज मंगलवार का शुभ दिन भी है। कोई रंगीन कपड़ा मंगवाओ।'

पटवारी लद्दाराम ने हँसकर कहा, 'भय्या खरा-खोटा ठोक-परख लो, बाद में न कहना।'

इस पर खूब ठहाका लगा। सत्यवती ने बीच में हस्तक्षेप कर कहा, 'पटवारीजी खरा क्या आँखों से छिपता है?'

देवेन्द्र के मन में एक अजीब सी धक-धक हो रही थी। नवयुवकों के मन में विवाह से पूर्व एक हल्की सी सिहरन उत्पन्न होती है, वैसी ही एक सिहरन वह अनुभव कर रहा था। उसे ऐसे समय में होने वाले रीति-रिवाजों का कुछ भी ज्ञान न था। उसने किताबों में ही पढ़ा था कि कैसे मँगनी होती है, कैसे सगुन की रस्म अदा होती है किन्तु, प्रत्येक प्रान्त की अपनी विविधताओं के कारण वह पसोपेश में था कि आगे क्या होगा।

तब तक पड़ौस की जीतो दादी एक जार्जेट की धानी चुन्नी ले आई। चरणदास उठे, उन्होंने वह चुन्नी देवेन्द्र के सर पर उढ़ा दी।

पटवारी जी ने देवेन्द्र से कहा—

'बेटा जरा कपड़ा तो ठीक से लपेट लो माथे पर!'

वह चकरा गया। अटकते हुए उसने पूछा 'क्या साफा बाँधना होगा ?'

इस पर सत्यवती समेत सभी हँस पड़े। सत्यवती ने हँसी की ही मुद्रा में अच्छी तरह चुन्नी उसके सर पर रख दी।

चरणदास जी ने आगे बढ़कर उसे पाँच रुपये पकड़ाते हुए कहा, 'आज से आप हमारे हो गये।'

उसने यंत्र की भाँति रुपये मुट्ठी में थाम लिये और आगे वह क्या करे यह उसकी समझ में न आने पर भी उसने भावी सास-श्वसुर के पैर छू लिये। उसने यह सब अपनी बुद्धि के ही अनुसार किया किन्तु इससे पटवारी जी समेत चरणदास और सत्यवती प्रसन्नता से भर उठे।

सत्यवती ने आशीष देते हुए कहा, 'जुग-जुग जियो'—और चरणदास ने धीरे से कुछ कहकर उसके सर पर हाथ रख दिया।

इस प्रकार मंगनी की यह रस्म अदा हो गई। अगले दिन लड़की को लाने की बात कहकर चरणदास चले गये।

सारी रात देवेन्द्र सोचता रहा। उसने अगले दिन अपनी भावी पत्नी को देखना था। वह उसके रूप, रंग और गुणों के बारे में काल्पनिक अनुमानों में डूबा रहा। उसके जीवन का यह प्रथम अवसर था कि उसे स्त्री के बारे में इतने निकट की कल्पना करनी पड़ी हो। उसने सुना था कि वह काफी पढ़ी-लिखी है, स्वभाव की मृदु और रूप-रंग में अद्वितीय है। क्षण भर के लिये वह अपने वैवाहिक-जीवन की कल्पना करने लगा और फिर उसने उस समय की, कल्पना की जब उसकी मंगेतर उसके सामने होगी और वह उसे देखेगा। इसी प्रकार कल्पनाओं की उड़ान भरता हुआ वह सो गया।

देर से सोने के बाद भी अगले दिन जल्दी ही उसकी आँख खुल गई। वह उठ बैठा और प्रातःकालीन कार्यों से आनन-फानन में निवृत्त हो गया। उसने सूटकेस खोलकर एक बढ़िया समर सूट निकाल कर पहना, बालों को शहरी ढंग से सँवारा और एक अच्छी सी टाई बाँध

कर वह बैठक में आ गया। पटवारी जी अपना बस्ता खोले कुछ खाना-पूरी कर रहे थे, बड़ा सा एक हुक्का सामने रखा था और नैचे को मुँह में दबाए वह तमाखू का नीला-नीला धुआँ उगल रहे थे।

देवेन्द्र को इतनी सुबह तैयार देख व्यंग्य से मुसकराते हुए उन्होंने कहा, 'बेटा! क्या बात है। बड़ी जल्दी है क्या ?' फिर स्वयं ही उन्होंने कहा, 'भगवान् ने चाहा तो जल्दी तुम गृहस्थी हो जाओगे।'

देवेन्द्र ने लजा कर मेज से धर्मयुग उठा लिया, जिसे वह जालंधर से अपने साथ लाया था। कुछ देर वह योंही बैठा रहा और फिर उसने एक सिगरेट जला ली—धीरे-धीरे उसका नीला धुआँ वह ऊपर छोड़ता गया।

अभी उसको बैठे कोई आधा घंटा भी न हुआ था कि सत्यवती भीतर प्रविष्ट हुई। पटवारी जी ने उठकर बाँस का मूढ़ा आगे करते हुए कहा 'आओ बैठो चाची !'

तब तक देवेन्द्र भी उसे प्रणाम कर चुका था, वह आशीर्वाद देकर बाहर झांकती हुई बोली 'तोपी नी !'

'हाँ जी माता जी।' बाहर से एक महीन आवाज आई।

'नी बाहर क्यों खड़ी हो गई ओ ! अन्दर आ जाओ।'

'जी आईयाँ' उत्तर मिला।

और फिर क्रमशः एक के पीछे एक करके दो लड़कियाँ बैठक में प्रविष्ट हो गई। उनमें से जो सबसे आगे थी उसकी उमर कोई सत्रह-अठारह वर्ष की रही होगी। वह बेल-बूटेदार सिल्क का एक गरारा पहने थी और एक ऊँची सी कुर्ती के ऊपर गले में लपेटी गई उसकी नीले रंग की चुन्नी का दायाँ भाग झूल रहा था। उसने दो चोटियों में अपनी वेणी गूँथी हुई थी और माथे के बालों का एक कुंतल सा बन कर उसके गोरे मुख पर छिटक कर रह गया था। उसकी आँखों में बचपन की सी चुस्ती भरी हुई थी और न जाने कैसे वह अपनी चंचल सी

लगने वाली प्रकृति पर नियंत्रण किये अपने पीछे सिकुड़ी, सिमटी उस युवती को लिये सामने वाली चारपाई पर बैठ गई।

देवेन्द्र ने अपने मुँह के आगे धर्मयुग कर रखा था, और उन दोनों की एक झलक मात्र देख वह समझ गया कि उसकी होने वाली वधु पीछे वाली है, क्योंकि एक तो उसकी आयु पहली से अधिक थी और दूसरे उसने अपनी गर्दन इतनी नीची की हुई थी कि सत्यवती को कहना पड़ा, 'ज्योति ! नी चंगी तराँ बैठ !'

माँ की बात का आशय वह समझ गई, शायद इसी लिये उसने बड़ी कठिनाई से गर्दन ऊँची कर ली, इसके बाद भी पलकें उसकी झुकी ही रहीं। देवेन्द्र ने एक बार अखबार की ही ओट से उसे देखा तो पल भर के लिये उन दोनों की दृष्टियां टकरा गईं। फिर जैसे दोनों को चोरी करते किसी ने पकड़ लिया हो, दोनों ने अपनी पलकें हटा लीं। देवेन्द्र फिर अखबार को मुँह पर लगाये बैठ गया।

इस एक ही झलक में उसने अपनी मंगेतर को देख डाला। वह आयु में उससे कुछ छोटी अवश्य थी किन्तु उसकी आँखों में जो भोलापन था, वह उसे पसन्द आ गया। देखने में भी वह सुन्दर थी और फिर आज मखमल का लाल कुर्ता, सलवार उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा रहे थे। उसके माथे पर पड़ी हरी चुन्नी, काले बालों को ऐसे ही ढके हुई थी मानो हरी लताओं के बीच में कोई पत्थरों की काली चट्टान दिखाई पड़ रही हो। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं और उनके ऊपर कमानीदार भौंहें इसी प्रकार लुभावनी लग रही थीं जैसे वीरान स्थान पर बसे किसी अर्वाचीन किले पर छिटका अर्धचन्द्र ! उसके पास बैठी लड़की, जिसका नाम संभवतः सन्तोष होगा, क्योंकि उसे तोषी कहकर पुकारा जा रहा था, धीरे से कुछ बातें करती रही। वे बातें देवेन्द्र से सम्बन्धित न होंगी, क्योंकि ऐसे अवसरों पर तीव्र उत्कंठा होने पर भी लड़कियाँ प्रायः सम्बद्ध बातें नहीं करतीं।

इस बीच पटवारीजी और सत्यवती इधर-उधर की बातें करते

रहे और उन दोनों की यह पूरी चेष्टा रही कि देवेन्द्र एक बार ठीक से लड़की को देख ले, किन्तु उसने नजर न उठाई।

इसी प्रकार कोई बीस मिनट चलता रहा, अन्त में पटवारी जी ने देवेन्द्र को लक्ष्य कर कहा 'बेटा! अन्दर की आलमारी से जरा एक खाता तो निकाल लाओ! लाल रंग का है।'

सिर हिलाकर देवेन्द्र उठकर भीतर की कोठरी में जाने को मुड़ा तो एक बार पुनः उसने ज्योति की, और ज्योति ने उसकी ओर देखा। यह सब पल भर में हो गया।

खाता लाकर उसने पटवारीजी के सामने रख दिया, तो सत्यवती ने कहा 'अच्छा भय्या अब हम चलेंगे।'

'ऐसी भी क्या जल्दी है।' पटवारीजी ने उसे टोकते हुए कहा, 'गन्ने का रस मंगवाया हुआ है, पीकर जाना।'

सत्यवती ने धीरे से उसके कान में कहा, 'अब यहाँ खाने का हक नहीं रहा मुझे' और वह हँसती हुई दोनों लड़कियों को आगे करके बाहर निकल गई। पटवारी आगे कोल्हू तक उन्हें छोड़ने गये। रास्ते में सत्यवती ने धीरे से पटवारीजी के कान के पास मुँह ले जाते हुए कहा, 'मैं तो बड़ी खुश हुई। अहा!! लड़का हो तो ऐसा हो। लड़की की ओर मुँह फेरकर भी न देखा।'

यह जैसे पटवारीजी की अपनी बड़ाई थी, गर्व से फूल कर कुछ ऐंठले हुए से वह बोले, 'याद करोगी चाची लद्दाराम को।'

'हाँ' उसने हँसी को तनिक तीव्र करते हुए कहा, 'यही तो एक काम तुमने उमर भर में भला किया है, नहीं तो······।'

पटवारीजी दूसरों की जायदाद दबा देना अपना व्यापारिक कर्त्तव्य समझते थे अतः सत्यवती की बात को उन्होंने हँसी में उड़ा दिया और फिर वापस हो गये। रास्ते में वे सोच रहे थे कि वे इस इलाके के भाग्य-विधाता हैं। जिसको चाहें राजा बना दें, और राजा को रंक बनाना उनके बाँयें हाथ का खेल था। मिल्खीराम का आधा बगीचा

उन्हीं की कृपा से आज चरणदास की सम्पत्ति थी, और एक प्रकार से पटवारीजी इसके लिये चरणदास को अपना अहसानमन्द भी समझते थे।

इस प्रकार ज्योति की मंगनी हो गई। अगले ही दिन सगन आदि लेने की तिथि भी नियत कर दी गई। सभी बातें पक्की करके देवेन्द्र तीसरे दिन जालन्धर की गाड़ी में बैठ गया।

७

क्रमशः दिन बीतते गये और वह तिथि भी निकट आती गई, जब देवेन्द्र के साथ ज्योति का विवाह होने वाला था। सगन कोई बीस दिन में दिया जाना था और फिर उसके एक मास बाद विवाह हो जाना था।

इन दिनों ज्योति गम्भीर रहने लगी थी। पास-पड़ोस की औरतें व अपनी सहेलियों से उसने सुना था कि अजीत के साथ उसका जन्म से पूर्व ही सम्बन्ध तय कर लिया गया था। उसे यह भी पता था कि उसके पिता ने अजीत के स्कूल वाले बाग को छल से दबा लिया है और पं० मिल्खीराम की शिक्षाशाला के पवित्र उद्देश्य का बलिदान करने वाले भी वही हैं। कभी-कभी अजीत के प्रति उसका हृदय सहानुभूति से भर उठता और वह सोचती कि उसका क्या दोष है भला, जो उसे गाँव से उखाड़ा गया! उसे कुत्ते से भी बुरा समझ, उसके स्वाभिमान को चोट दी गई। वह अपने बारे में सोचती कि सिद्धांत रूप से उस पर अजीत का दावा उचित है किन्तु अजीत निर्धन हो गया, इसीलिए उससे उसे छुड़ाकर दूसरे व्यक्ति को सौंपा जायगा। वह नये जमाने की हवाएँ देख चुकी है, फिर भी वह वचन-भंग करने वाली बात का समर्थन नहीं करना चाहती। दुनियाँ में मुँह से निकली बात पर ही क्या-से-क्या हो जाता है किन्तु उसके पिता का आपसी वैमनस्य आज इतना ऊँचा बढ़ गया कि उसकी आड़ में वचन और प्रतिज्ञाओं का कोई मूल्य नहीं। आज बहुत दिनों के बाद उसे एक वर्ष पूर्व की वह घटना स्मरण हो आई जब अजीत से वह उसके स्कूल वाले बाग में मिली थी उसने अजीत को रुपये देने चाहे थे और अजीत ने अभावों के बीच भी उन्हें ठुकरा दिया था। उसने दृढ़ता पूर्वक कहा भी था कि 'संकल्प के अनुसार आप मेरी वाग्दत्ता...'

उसे याद आया कि अजीत की बात को उसने पुरानी बात कह कर टाल भी दिया था, किन्तु तब भी वह वास्तविकता से इन्कार नहीं कर सकी थी। ज्योति के दिमाग में जो बड़प्पन की भावना पल रही थी उसे चोट देने वाला अजीत ही था, इन दिनों जब कभी वह आमों के बाग की ओर जाती तो मिल्खीराम जी के पुश्तैनी बाग के दो टुकड़े देख वह दुःख से भर उठती। वह शिक्षा मंदिर, जहाँ दिन भर बच्चों की उन्मुक्त किलकारियाँ बहती रहतीं, जहाँ सारे दिन कोलाहलमय वातावरण गुंजरित होता रहता वहाँ अब मौत जैसी शान्ति थी। वह मकान, जिसमें स्कूल का सामान बन्द पड़ा था, बूढ़ा हो गया लगता था, उसकी किवाड़ों पर पड़े ताले में जंग लग गई थी जिन आम्रवृक्षों की सघन छाँह में शिक्षा का संगीत गूँजा करता वे अब अन्धों के समान कमर झुकाए खड़े थे और इन सबके बीचों-बीच थी एक बाँस के लट्ठों की दीवार! जिसने दो हृदयों के बीच कभी न मिल पाने वाले दो विपरीत किनारे खड़े कर दिये थे। उधर अजीत के स्वर्गीय पिता का मन्दिर था और इधर उस मन्दिर को मरघट के रूप में बदलने का कारण खड़ा था, चरणदास का हिस्सा। बीच की दीवार वह तलवार थी, जिसने सर को धड़ से अलग कर दिया था।

वह जब न्याय और अन्याय की तुलना के रूप में सोचती है, तब उसकी अनुभूतियाँ उसके हृदय में एक अन्तर्द्वन्द्व पैदा कर देती हैं। चेष्टा करने पर भी वह अन्तर्द्वन्द्व को दबा नहीं पाती तो गाँव के बाग की ओर टहलने निकल जाती है, उसी बाग की ओर, जिसने उसे टीस दी है, जिसने उसके अभिमान की दीवार को हिलाकर रख दिया है वही रात, वही स्थान उसके अन्तर्नेत्रों में घूम जाते हैं, जहाँ वह अजीत से मिलती थी, वहाँ सूखे पत्तों की एक चादर बिछ गई देख उसे दुःख होता। वह चारों ओर नजर घुमा कर देख लेती और फिर उस स्थान की सूखी पत्तियों को हटाकर साफ कर देती। उस समय उसे ऐसा ही अनुभव होता जैसे किसी ने जले हुए घाव में गुलाब का फाहा रख दिया हो।

मन-ही-मन वह सोचती है जहाँ गाँव में लोगों के घर कई-कई मंजिले हो गये हैं, वहाँ यह पवित्र मन्दिर कुछ दिनों में ढह पड़ेगा। पर इससे क्या? लोग उसकी चिन्ता भला क्यों करें? बार-बार सोचने पर भी वह इस बात का उत्तर नहीं पाती कि इस स्थान से उसे इतना मोह क्यों है। जब वह पिछली स्मृतियाँ लेकर वहाँ से लौटती है, तब अनायास ही उसकी आंखों में एक सैलाब-सा उतर आता है और फिर कुछ अश्रुकण उन सूखे पत्तों पर बिखेरती हुई वह चल पड़ती है।

उसकी सहपाठिन सात दिनों की छुट्टी लेकर इन दिनों गाँव आई हुई है, उसी से हृदय की बात कह कर ज्योति अपने मन की पीड़ा को शान्त कर लेती है। वह दूरस्थ किसी गाँव के एक स्कूल में अध्यापिका है, इतनी सम्पन्न नहीं कि मनचाही शिक्षा ले लेती। गरीब माँ ने फिर भी उसे एफ० ए० तक शिक्षा दिलाई, जिसके कारण वह अध्यापन कार्य कर, अपनी और अपनी बूढ़ी माँ की गाड़ी खींच रही है। विवाह योग्य हो जाने पर भी उसने कभी भूल कर भी इस बारे में न सोचा कि वह कभी किसी घर की शोभा भी बनेगी। उस दिन ज्योति ने उससे कहा, 'सन्तोष! नी बता, क्या तू उमर भर यों ही बैठी रहेगी?'

एक पीड़ामय मुस्कान में उसने उत्तर दिया था, 'बैठी क्यों रहूँगी; मेहनत करूँगी!'

'अरे मूर्ख! शादी के बारे में कह रही हूँ।'

'तू पहले अपना तो झगड़ा निपटा।' संतोष ने हँसते हुए उत्तर दिया था। वैसे संतोष के विवाह की कई बार बातें चली थीं किन्तु वर-पक्ष वालों की माँग इतनी होती कि उसे एक बार अपनी बूढ़ी माँ और फिर अपनी शक्ति को देखना पड़ता। वह जानती थी कि वह किसी को स्कूटर, घड़ी, रेडियो और सिलाई मशीन नहीं दे सकती। वह फर्नीचर गर्म सूट एवं अन्य बखेड़ा नहीं दे सकती। फिर कौन उसे अपनाएगा! इन बातों ने उसे इतना मर्माहत कर दिया था कि अब मह आजन्म अविवाहित रहने की धारणा को मन में स्थान दे रही थी।

उसके घर में माँ के सिवा कोई तीसरा प्राणी नहीं है। कुछ जमीन भी है, जो बटाई पर दी हुई है, एक जीर्ण-शीर्ण मकान भी है। वह सोचती है कि यदि वह गृहस्थी बसा ले तो माँ का क्या बनेगा ? माँ जब भी तत्सम्बन्धी बात छेड़ती है, वह प्रसंग को टाल देती है। एक सौ बीस स्कूल से कमाती है, कुछ अनाज आ जाता है, और गुजर चल रही है।

एक संध्या को ज्योति संतोष के साथ बाग में बैठी बातें कर रही थी, किन्तु जब वह सुनसान बाग और उसके बीच मौन साधना करता वह स्कूल का मन्दिर उसकी आँखों के आगे आता तो वह क्षण भर के लिये गम्भीर हो जाती, उसकी आँखें मानो सर्वत्र व्याप्त नीरवता से कुछ प्रश्न सा करती जान पड़तीं।

ज्योति को मौन देख सन्तोष ने अजीत की चर्चा प्रारम्भ कर दी। वह देर तक बैठी संतोष की बातें सुनती रही, संतोष ने उससे स्पष्ट कहा, 'एक बात तो मैं कहूँगी ज्योति ! तुझे बुरी जरूर लगेगी, और वह बात यह है कि अजीत के साथ तुम भी अन्याय करने जा रही हो। चरणदास चाचा ने जो किया, या कर रहे हैं, उसके बारे में तुमने कभी 'उफ' भी न की !'

'तोषी !' वह प्यार से सन्तोष के सर पर हाथ रखती हुई बोली, 'तू नहीं जानती मेरी परिस्थितियों को। अनचाहे भी कभी उनका बुरा मैं नहीं सोच सकती, किन्तु माँ-बाप की हठ के आगे कर ही क्या सकती हूँ...तोषी ! मैं कभी-कभी बहुत रोती हूँ, सोचती हूँ, औरत चाय की प्याली है, जिसे हर कोई दूसरों के हाथ सौंप देता है…उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। मैंने पढ़ा, लिखा सभी कुछ किया, पर क्या तू यह कह सकती है कि मैं सरेआम अपने माँ-बाप को चुनौती दे कर उनके निश्चय को ठोकर मार दूँ ?'

सन्तोष ने कहा, 'ठोकर मारने के लिये मैं नहीं कहती, लेकिन उचित-अनुचित का ज्ञान तो उन्हें करा ही सकती हैं। यह तो कह

सकती है कि यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है।'

ज्योति ने उठते हुए कहा, 'हाँ ऐसा कह सकने योग्य मैं अपने आप को बना रही हूँ।' कुछ क्षण बाद उसने पुनः पूछा—

'अभी कितने दिन की छुट्टी और बाकी है तेरी।'

'बस पर्सों जा रही हूँ।' सन्तोष ने कहा।

'वैरी ! कुछ ज्यादा दिन के लिये आई होती !'

'क्या करूं बहन' सन्तोष ने विवशता प्रकट करते हुए कहा, 'प्रधानाध्यापिका मानती ही नहीं। बड़ी मुश्किल से आ पाई हूँ। माँ का यहाँ अकेला रहना मुझसे देखा नही जाता। अब सोचती हूँ, कुछ दिन बाद माँ को भी वहीं बुलवा लूंगी।'

उसके बाद इधर-उधर की बहुत सारी बातें करते हुए ज्योति और सन्तोष गाँव के कुएँ से अलग हो गये।

कुएँ पर खड़ी कई औरतों ने ज्योति को देखा तो, कुछ ने उसके भावी पति के बारे में छेड़-छाड़ करनी प्रारम्भ कर दी। उसकी एक भावज ने कहा, 'नी, गाबरू चँगी तराँ ए"?'

ज्योति उसे एक चुटकी काटते हुए आगे बढ़ गई। उसे ऐसे मजाक अच्छे नहीं लग रहे थे।

उस दिन घर जाकर ज्योति के मन में रह-रह कर एक ही बात उठती रही, वह एक ही भाव में डूबी रही और वह थी अजीत की बात। उसने अपने मन को दृढ़ किया और निश्चय किया कि वह इस बात के लिये माँ से स्पष्ट कहेगी कि अजीत के साथ अन्याय हुआ है। उसके पिता का बलिदान हमारी दुर्भावनाओं का परिणाम है; उसके शिक्षा मन्दिर का सर्वनाश कराने वाले हम हैं···यही नहीं इस गाँव से अपमानित कर उसे दर-दर भटकाने में भी हमारा ही हाथ है···वह चाहती है कि वह उसके घाव में सहानुभूति का फाया रख कर उसकी पीड़ा को पी जाय।

यही सोच कर वह उदास भाव से माँ के पास जा बैठी। सत्यवती

तब आलू छील रही थी। ज्योति को उदास देख उसने चाकू और अधछिला आलू जमीन पर रख दिया। फिर ज्योति के सर पर हाथ रखते हुए पूछा—

'क्या बात है बेटा ? क्यों गुम-सुम हो ?'

ज्योति ने एक बार अपनी माँ के सरल, निश्छल मुख की ओर देखा, जिसमें अपनी बच्ची के प्रति असीम स्नेह के भाव निहित थे, और फिर मन को कड़ा करते हुए कहा, 'माँ, अगर बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ, यह निश्चय जानो, कोई ऐसी बात न बोलूँगी माँ ! जो मर्यादा से बाहर हो।'

सत्यवती आँखें फाड़ कर ज्योति की ओर देखने लगी। आज ज्योति उसके आगे पहेलियाँ बुझा रही थी, उसने आश्चर्य के साथ व्यग्र-भाव से कहा, 'सुनिये ! तू कैसी बातें कर रही है आज ! पागल, माँ से ऐसे बातें क्यों करती है, जो भी बात हो पूछ ले। मैं कोई तुझसे बाहर हूँ ?' और वह ज्योति की ओर उत्सुकता से देखने लगी।

ज्योति ने गर्दन नीचे झुका दी, और चुन्नी को और आगे सरका कर पूछा—

'अच्छा माँ ! जब मिल्खीराम जी जिन्दा थे, तब उनमें और बाबू जी में कोई करार हुआ था ?'

सत्यवती ने चकरा कर ज्योति की ओर देखा। वह सोच रही थी कि आज लड़की को क्या हो गया, क्यों वह ऐसी बात पूछ रही है ? फिर भी उसने उत्तर दिया, 'हाँ हुआ था करार !'

'क्या करार हुआ था माँ ?'

रुक-रुक कर सत्यवती बोली, 'मिल्खीराम जी ने तुझे माँग लिया था।'

'पिता जी ने हाँ भर ली थी ?'

'हाँ, तब तो भर ली थी !'

कुछ देर तक सोचने के बाद ज्योति ने फिर पूछा, 'माँ वह बात,

जिस पर हमारी रहट है वह भी तो मिल्खीराम जी का ही है न ?'

'हाँ था !'

'अब उनका क्यों नहीं रहा ?'

'तुझे इन बातों से क्या मतलब बेटा ?' ज्योति की माँ ने कहा, 'ये सब तेरे बाबूजी की बातें हैं, उन्हें वही जानते हैं।'

ज्योति पर माँ की बातों का कोई प्रभाव न हुआ, बल्कि उल्टे उसके भीतर छिपा आक्रोष बाहर आ गया। तनिक तीव्र स्वर में वह बोली, 'माँ, दुनियाँ में किसी के किये कोई मरता नहीं। कोई कितना ही बुरा करे, जिस पर ईश्वर की आँख है उसका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। लाजवन्ती चाची को आज भी मैं नहीं भूली हूँ। तुम्हारी बड़ाई करती-करती वे स्वयं को भूल जाती थीं और आज हमारे कारण उनका वंश लोप होने जा रहा है। माँ चाहे तुम मुझे लाख कुलच्छनी कहो, लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूँगी···और दूसरी बात भी सुन लो माँ, यह रिश्ता नहीं हो सकता !' यह कहकर ज्योति ने अपनी चुन्नी से मुँह ढाँप लिया और अनायास ही बच्चों के समान वह फूट-फूट कर रो पड़ी। रोते ही रोते उसने कहा, 'मैं सच कहती हूँ माँ···अगर मेरी इच्छाओं का बलिदान किया गया तो शायद फिर तुम्हें मुझसे हाथ धोने पड़ें···।'

इस अप्रत्याशित समस्या से सत्यवती बुरी तरह चिन्तित हो उठी। उसकी समझ में न आया कि वह क्या करे। उसे ज्योति की एक-एक बात काट रही थी और उसके निवारण का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। फिर भी उसने ज्योति की गर्दन को अपनी छाती से सटाया, उसके आँसू पोंछे और उसे दिलासा दिलाती हुई बोली, 'बेटा ! तू ही बता मैं क्या करूँ ! तेरे पिता जी किसी की सुनते हैं ? जो बातें तू कह रही है, वे मेरे मन में नहीं है ऐसा मत सोच मुन्निये ! पर अब तो बेटा सर से पानी गुजर गया है, बता क्या हो ?'

ज्योति ने उसी प्रकार कहा, 'मुझे पता नहीं माँ ! मैं पानी गुजरने

की बात भी नहीं मानती। मैंने तो कह दिया है कि यह अन्याय मैं होने न दूँगी...।'

सत्यवती ने उसे चुप कराया—

'बेटी ! यह कोई बच्चों के खेल नहीं हैं। सगन लेने की तैयारी हो चुकी है। बिरादरी में नाक कट जायेगी।'

यह नकली नाक है माँ,' ज्योति ने कहा, 'पहले ही कुछ कम नाक कटी है ? उसे तो जोड़ने की बात करो !'

'तुझे पता नहीं है बेटा !' सत्यवती ने उसके सिर पर हाथ फिराते हुए कहा, 'हम इस गाँव में मुँह भी दिखाने योग्य नहीं रहेंगे।'

'दूसरों के मुख पर कालिख पोतकर अपना मुख उज्जवल करने का हमें कोई हक नहीं है माँ !' ज्योति ने कहा।

'तू धीरज रख मुन्नियें !' सत्यवती ने फिर कहा, 'पचासों बार तो उन्हें समझा चुकी हूँ अब फिर समझा देखूँगी। अपने मन को छोटा न कर बेटी।'

और फिर एक आशा, एक भविष्य की धुँधली सी झलक की कल्पना कर दोनों माँ-बेटी उठ गये—जो सर्वथा असम्भव था।

८

इन्हीं दिनों माहेवाल गाँव में एक आकस्मिक घटना घटित हो गई और उसकी पृष्ठभूमि इतनी शीघ्रता से बनी कि किसी को कुछ सोचने का अवसर भी न मिला कि वह क्या करे।

सन्तोष के मामा ने उसकी बूढ़ी माँ को एकाएक आकर यह समाचार कह सुनाया कि पटियाले के एक बड़े सम्भ्रान्त घर में वे सन्तोष का रिश्ता पक्का कर आये हैं। लेन-देन के बारे में उन्होंने कहा कि पाँच हजार नकद में वे मान जायेंगे, बाकी दस हजार का पट्टा करा लेंगे। फिर जब रिश्ता हो जाए तो कौन लेता-देता है।

सन्तोष की माँ के लिये तो ये पाँच हजार भी सम्भव न थे, उसने शंका उठाई कि पट्टा करने वाली बात लड़की के जीवन भर के लिये दुःख का कारण बन जायेगी। सन्तोष के मामा ने उसे समझाया, बुझाया और आखिर राजी कर ही लिया। इतना सब होने पर भी सन्तोष की माँ का मन डरता रहा। वह जब इस सोच में पड़ जाती तो उसकी पलकों से नींद गायब हो जाती।

इसी बीच सन्तोष बुलाई गई। लड़का आया और बातों-ही-बातों में सगन दे दिया गया। सन्तोष ने इस बारे में कुछ भी न सोचा। इच्छाएँ क्या होती हैं, इनकी उसने कल्पना भी न की।

दसवें दिन बारात आ गई। वर के माता-पिता को विवाह की जल्दी थी, क्योंकि विवाह करने के पश्चात् लड़का साइंस के अध्ययन के लिये अमेरिका जाना चाहता था। इस सारी भूमिका के पीछे एक ही चीज घूम रही थी और वह था नकद पाँच हजार रुपया। वर के पिता एक सम्भ्रान्त डाक्टर थे किन्तु पास से पैसा खर्च करने से कहीं अच्छा वे बाहर से हाथ मारना पसन्द करते थे। उन्हें लड़के का विवाह

करना आवश्यक था। कुलीन घराना, सौम्य वधु और पैसा, सभी कुछ वे चाहते थे। यद्यपि पाँच हजार रुपया नकद उनके लिये कुछ भी न था किन्तु साथ ही वे गरीब घर की लड़की इसलिये चाहते थे जिस पर सदा उनकी सम्पदा का रौब जमा रहे, इसलिये सन्तोष को उन्होंने महत्ता दी।

बारात में कोई पचास आदमी आये। मोटर, कार और बाजे वाले आये। भंगड़ा की मंडली आई। अपनी ओर से वर पक्ष वालों ने शान-शौकत में कोई कमी न की। चौपाल के बाहर उनके ठहरने के लिए शामियाने तन गये, चारपाइयाँ बिछ गईं। गरीब और बेसहारा होने पर भी नोपी की माँ ने अपने भर कोई कसर न छोड़ी। दो बीघे का एक खेत पटवारी लद्दाराम के पास गिर्वी रख कर उसने बरातियों के लिये सारे साज-सामान इकट्ठे कर दिये। थोड़ा बहुत जो पुराना सोना पड़ा था, उसकी नयी चीजें बनवा दीं। दस-बारह सूट बनवा दिये। इसके अतिरिक्त बर्तन, भांडे, पलंग आदि भी उसने जोड़े। नकदी के लिए बहुत चेष्टा करने पर भी वह तीन हजार से अधिक न जुटा सकी और इसी छोटी-सी बात ने एक ऐसी घटना की सृष्टि कर दी कि उसे एक बड़ी घटना का नाम मिल गया।

बात यों हुई कि विवाह की अन्य सभी रस्में पूरी हो जाने पर जब लेने-देने का समय आया तो सन्तोष के मामा ने चुप-चाप हाथ जोड़कर तीन हजार वर के पिता के चरणों में रख दिये। डाक्टर साहब ने पूरे व्यापारी के समान तीन हजार के वे नोट गिने और फिर क्रोध में अपने साथियों की ओर देख वे जोर से चिल्लाये, 'धोखा हुआ है! बारात वापस जायगी।'

इसके बाद वही कुछ हुआ, जो अकसर ऐसे मौकों पर होता है। कई बड़े बूढ़ों ने मिन्नतें कीं, सन्तोष की बूढ़ी माँ ने भीतर बुलाकर डाक्टर साहब के पैर पूजे पर कोई प्रभाव न हुआ। सारे गाँव भर में तेजी से यह खबर फैल गयी। बहुतेरे लोगों ने दुःख प्रकट किया किन्तु आड़े वक्त पर कोई काम न आया। सिवा मौखिक सहानुभूति के किसी

ने उस अभागे घर की आग न बुझाई। कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने इस अवसर पर जिह्वा का आनन्द लिया—

"मास्टरानी चली थी रानी बनने।"

"अब उमर भर माथे पर हाथ धर के बैठेगी"—आदि-आदि।

उधर सन्तोष ने जब यह बात सुनी तो बरबस आँसू रोक लिए। ज्योति उसे सहारा दिये थी, वह निर्जीव सी बैठी अपने मेंहदी रचे हाथों की ओर देख रही थी, जो अब सदा के लिये अछूते रह जाने वाले थे। उसने बिछुओं से सजे अपने पैरों की ओर देखा जो उसके लिए बेकार थे और फिर उसने अपने माथे पर हाथ फेरा जहाँ सौभाग्य सूचक बिंदिया लगी थी। एक साँस में सन्तोष ने उसे उखेड़कर जमीन में फेंक दिया इतने पर भी जब उसकी आत्मा शान्त न हुई तब वह ज्योति की गोद में सर रख कर रो दी।

मंडप में सन्नाटा छा गया था, हवनवेदिका के समीप पुरोहित बैठा शून्य की ओर निहार रहा था और वेदिका में से सामग्री का उठता हुआ धुँआ मानो एक बेबस की खिल्ली उड़ाता सा जान पड़ रहा था। डाक्टर साहब बरातियों से कह रहे थे 'उठो बारात वापस जायगी ...' मंगलगान गाने आई महिलायें स्तब्ध बैठी तोषी के दुर्भाग्य पर टिप्पणी कर रही थीं।

अन्तिम बार तोषी के मामा ने प्रार्थना की, 'डाक्टर साहब! समय हमारे आड़े आ गया है। पानी गुजर जायेगा तो आपका सब कुछ अदा कर देंगे।'

डॉक्टर साहब ने हाथों को नचा-नचा कर, अपनी सबलता का प्रदर्शन-सा करते हुए कहा, 'पहली ही बार में जहाँ धोखा है, उनसे रिश्ता करके हम अपने खानदान की नाक नहीं कटाना चाहते हैं...'

और इतने में ही एक अद्भुत बात सामने आ गई। वह बात एक नाटकीय घटना सदृश थी। जहां लद्दाराम पटवारी बैठे थे उनकी बगल से कूदकर एक युवक विवाह वेदी के पास जाकर खड़ा हो गया। उसने

आते ही जोर-जोर से कहना शुरू किया 'यह डाक्टर साहब की हिमाकत है। इस तरह की सौदेबाजी करने से तो बेहतर था वे डाका डालते। आज वे एक कुलीन घराने की आबरू को रुपयों के जोर से रौंद रहे हैं, पर कल समय आयेगा जब उनकी यह बड़ी-बड़ी मूँछें इतनी नीची हो जायेंगी कि शायद उन्हें ऊँचा उठाना भारी हो जायेगा।' वह और कुछ कहने जा रहा था कि लद्दाराम पटवारी ने उसे टोका।

'देवेन्द्र, पागल हो गये हो क्या, तुम्हें इतना बढ़-चढ़कर बोलने की क्या जरूरत है ?'

सभी की आँखें उसकी ओर लगी थीं, कोई उसे देख कान-फूसी कर रहे थे, औरतों में से धीमे स्वर में कोई बोली, 'ज्योति का मंगेतर है !'

देवेन्द्र ने लद्दाराम की बात की पर्वाह किए बिना ही कहा 'मैं डॉक्टर साहब को छोटी-सी सीख देने आया हूँ। कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं हूँ। ब्राह्मण हूँ। खा-कमा लेता हूँ। अगर लड़की वाले कहें तो मैं मंडप में बैठने को तैयार हूँ···।'

उसकी इस बात से मंडप में छाई चुप्पी भंग हो गई। जितने मुँह थे खुल गये, किसी ने शाबाशी दी, किसी ने बुरा मनाया। चरणदास ने माथा पीट लिया। पटवारी जी अपने स्थान से हट कर आये और चीख कर बोले 'अरे मूर्ख क्या भाँग खाकर आया है ? तेरी तो सगाई हो चुकी है। तू कैसे यहाँ बैठ सकता है ?'

धीरता से उसने कहा, 'चाचा वे समर्थ हैं। उनकी लड़की अनब्याहे नहीं रह सकती, पर इस घर की लड़की का एक ही ठिकाना है और वह है मौत ! क्या आप सब उसकी मौत चाहते हैं ? पर मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।'

'गधा कहीं का,' कहकर पटवारी जी चीखे किन्तु उसकी दृढ़ता को देख किसी को आगे आने का साहस न हुआ। चरणदास ने पटवारी जी के पास आकर कहा 'लद्दा, अरे कब का बदला चुकाया बैरी ! अरे मैं कहीं मुँह दिखाने योग्य भी न रहा।'

पटवारी जी ने मुँह लटका लिया उनके आगे सिवा इसके दूसरा कोई चारा न था कि वे उठकर चल देते। वे इस बुरी घड़ी को कोस रहे थे जब उन्होंने देवेन्द्र को फिर चार दिनों के लिए गाँव बुलाया था और आज उसके साथ वे यहाँ आये थे।

डॉक्टर साहब और बरातियों के मुह लटक गये थे। वर महोदय अपने एक साथी के सहारे मुह छिपाये ऐसे ही बैठे थे जैसे अपने आप में इनका कोई अस्तित्व न हो—या वे शतरंज के मोहरे मात्र हों। डाक्टर साहब अपनी पाइप में से ढेर सारा धुआँ उगल कर अपनी झेंप मिटा रहे थे।

ज्योति ने जब यह बात सुनी तो उसे बात पर तब तक विश्वास न हुआ जब तक वह बाहर जाकर देख न आई। अपने मगेतर को इस प्रकार दृढ़ निश्चयी के रूप में देख उसे इतना हर्ष हुआ, जितना शायद जीवन में और कभी न हुआ हो। अपनी प्रिय सहेली के ऐसे संकट में देवेन्द्र उसे वरदान सदृश लगा, मन-ही-मन उसके त्याग की सराहना में लीन वह तोषी की माँ के पास गई, जहाँ वह औंधी पड़ी थीं। उसने और कई औरतों को जगाया, तोषी के मामा को समझाया। तोषी को हिम्मत बँधाई, और उस समय वह इतनी गतिशील हो गयी मानो घर की सबसे वयोवृद्ध महिला हो।

जब वह तोषी के पास गई तो उसने ज्योति के कन्धे में सर सटाये रोते हुए कहा—

'नहीं···नहीं पगली! मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। मैं तेरा सुहाग छीन कर अपनी माँग भरने से बहतर मर जाना ज्यादा पसन्द करूँगी।'

'देख तोषी!' ज्योति ने उसके आसू पोछते हुए कहा 'सरी! तू पछतायेगी। मेरी चिन्ता न कर। तुझे मेरे संकल्प का पता है···वह हो कर रहेगा तोषी···चल उठ!'

—और फिर सबके कहने-सुनने पर तोषी उठ खड़ी हुई। बधावे फिर शुरू हो गये···किट-किट-किट-धिन···करके ढोलक गूँज उठे।

छावा तमाशा वंगा दा
छावा तमाशा वगाँ दा ।
साडी गली विच आइयाँ वंगाँ, मैनूँ चढ्या चा
तमाशा वंगां दा·········
मास कोलों पुछ्गा, ननान कोन्नों पुछ्या
किसे न दितियाँ चडा ··तमाशा वंगां दा·········
बाहरों आया माही, हँसदा ते खेडदा
भाबो ने दित्ता सिखा, तमाशा वगां दा·········
अंदर वड़ के, डंडा फड़के चूड़ियाँ दा कीत्ता फना
तमाशा वंगां दा·········
छावा तमाशा वंगां दा···छावा तमाशा वंगां दा·······

गीतों के साथ ढोलक पर पतली उँगलियों की थाप पड़ने लगी और धीरे-धीरे वातावरण बदलता गया ।

तोषी लग्नमंडप पर लाई गई । खिसियाने बराती उठे और चल दिये । इस प्रकार कोई अर्धरात्रि में भावरें पड़ गईं ।

यह सब आकस्मिक रूप से हो गया, और इतनी शीघ्र हुआ कि इसे नाटकीय घटना के सदृश ही समझा जायेगा । बारात तो रात में ही खीझकर स्टेशन की ओर चली आई थी, अतः एक प्रकार से यह विवाह इतना फीका रहा कि इसे विवाह कहना भी असंगत है । पटवारी लद्दाराम चरणदास के आगे मुँह दिखाने योग्य भी न रहे थे, क्योंकि उनकी सारी प्रतिष्ठा आज देवेन्द्र ने धूल में मिला दी थी । अतः यह निश्चित ही था कि देवेन्द्र के लिये पटवारीजी के घर के दरवाजे सदा के लिये बन्द हो गये थे ।

फेरे पड़ने के बाद यह प्रश्न उठा कि देवेन्द्र के रहने की व्यवस्था कहाँ की जाए । न उसके साथ कोई बाराती थे, न कोई उसका हित-चिन्तक वहाँ था, सिवाय सन्तोष की माँ और मामा के, जिनकी डूबती नौका को ऐन वक्त पर उसने सम्हाल लिया था ।

धीरे-धीरे सब औरतें अपने-अपने घरों को चली गईं, और वातावरण शान्त होता गया। छोलदारी के नीचे लड़की वालों के कुछ नाते-रिश्तेदार अब भी पत्तलों पर खाना खाते दिखाई दे जाते, या कहीं बड़े बर्तनों को माँजने-धोने की आवाज आ जाती।

देवेन्द्र बैठक के कमरे में बैठा था, और लड़की वालों के एक दो नाते-रिश्तेदार उसके आस-पास बैठे उसके अदम्य साहस की प्रशंसा कर रहे थे। वह बेंत की बनी एक कुर्सी पर बैठा इस आकस्मिक घटना पर विचार कर रहा था। उसने अपने हाथ पर बंधे कंगनों की ओर देखा, जो कुछ ही समय पूर्व बाँधे गये थे, और फिर वह छत की कड़ियों की ओर देखने लगा। उसे लगा जैसे अभी न जाने कितनी कड़ियों को उसे काटना पड़ेगा तब वह आगे बढ़ सकेगा।

कुछ देर वह यों ही बैठा रहा। क्या से क्या हो गया, क्यों हो गया—इन विचारों की मास्तिष्क में चक्की चलाता रहा। उसने जो कुछ सोचा था हुआ उसके विपरीत। इस बात का उसे दुःख भी था और पछतावा भी, किन्तु उसने आवेश में आकर जो कुछ कर डाला वह भले के ही लिये किया यही सन्तोष उसे था···किन्तु एक नाव को बचाने के लोभ में दूसरी नाव को डुबो देना, क्या अच्छा था? एक प्रकार से वह ज्योति के आँचल में बँध चुका था और इतने लोगों के बीच उसने ज्योति के पिता से टीका लिया था और आज वह शीघ्रता में यह सब कर बैठा; इसके लिये जहाँ उसे एक महत् कार्य के सम्पादन की प्रसन्नता थी वहीं ज्योति की कल्पनामात्र करने से पश्चात्ताप की अग्नि में वह जलने लगा।

उसी समय कुछ छोटी आयु की बालिकाएँ उसे भीतर बुला ले गईं। अंधेरे से कमरे में सीलन भरी थी और उसी में एक लालटेन टिम-टिमा रही थी। एक कोने पर मिट्टी का एक छोटा-सा चबूतरा बना था जिसपर एक बड़ा सा दीया जल रहा था और दिये के पास ही छोटे-छोटे दो केले के वृक्ष खड़े करके रखे गये थे। उसके निकट ही एक रंगीन-सा

आसन बिछाया गया और तब फिर एक नवयुवती, घूँघट निकाले दूध का गिलास हाथ में लिये उसके सामने प्रस्तुत हुई। कई महिलाएँ आड़ से उसकी ओर देख रहीं थी, यह लक्ष्य करके उसने पलकें नीचे ही झुकाए रखीं।

उस नवयुवती ने दूध का ग्लास नीचे रखते ही अपने मुँह से पर्दा हटा लिया वह आगे खिसक आई। देवेन्द्र उसे देखते ही स्तब्ध रह गया। वह ज्योति थी।

कुछ क्षण तक मौन रहने के उपरान्त ज्योति ने कहना प्रारम्भ किया—

'मैं आपके साहस के लिये आपको बधाई देने आई हूँ···यह मैं हृदय से कह रही हूँ। दूध ठंढा न कीजिये!'

'सच में?' देवेन्द्र बहुत चाहने पर भी अपने आप को न रोक सका, उसने स्पष्ट वाणी में कहा, 'क्या वास्तव में आप इस घटना से दुःखी नहीं हैं! बहुत चाहने पर भी तब मैं अपने पर नियंत्रण न कर सका था···वह एक भावना का प्रश्न था, वैसे यह सब जल्दी-बाजी में हो गया···अब मैं बँध चुका हूँ···मैं चाहता हूँ कि एक बार आप मुझे क्षमा कर दें!'

'क्षमा?' वैसे गम्भीर वातावरण में भी ज्योति मुस्कराये बिना न रह सकी, उसी मुद्रा में उसने कहा, 'मैं किन शब्दों में आपको समझाऊँ! तोषी मेरी सहेली है···हम दोनों एक दूसरे में केवल शरीर का अंतर मानती हैं। आपने मेरी सहेली को सम्हाल कर मुझ पर इतना बड़ा अहसान कर दिया है कि मैं जीवन भर उससे उऋण नहीं हो सकती···मेरे पिता समर्थ हैं, उनके लिये यह बात जीवन-मरण का प्रश्न नहीं बनेगी, किन्तु सन्तोष! वह केवल सुशिक्षित है, बस यही उसका आधार है। आज उसके भाग्य में ग्रहण लग जाता किन्तु आपने समय पर उसे मिटा दिया······'

यह कह कर वह चुप हो गई और उसके आग्रह पर देवेन्द्र ने दूध

का गिलास लेकर एक ही साँस मे खाली कर डाला।

बाराती तो कोई आये नही थे, वातावरण आगे ही नीरस हो चुका था अत. अगले दिन प्रातः ही एक घोड़ा गाड़ी में देवेन्द्र के साथ तोषी को विदाकर दिया गया। स्टेशन तक तोषी के मामा भी पहुँचाने के लिये गये। ज्योति तोषी को विदा कराने न जा सकी। चरणदास ने उसे झिड़की देते हुए कहा, 'कलमुंही ! तुझे हया छू तक नहीं गई है। जिस नामाकूल के न कुल का पता हो न घर का, तू उसकी विदाई पर जा रही है'''खबरदार जो बाहर निकली तो'''!'

ज्योति की आँखों में अंगारे चमक उठे। वह बोली, 'मैं अपनी सहेली की विदाई में जा रही हूँ ''आप मुझे नहीं रोक सकते'''मैं जाऊँगी।'

चरणदास के लिये यह असह्य था कि उनकी लड़की उन्हें चुनौती दे, उन्होंने तड़ातड़ चार तमाचे उसके मुँह पर जड़ दिये। कोमल गुलाबी गालों पर एक रक्त की झलक आ गई और आँखों की राह सारा आक्रोश बाहर उमड़ आया।

तोषी की माँ ने सिसकी भरते हुए गर्दन नीचे किये तोषी को समझाते हुए कहा, 'तेरे करम अच्छे थे बेटी ! भगवान् तुम दोनों को सदा बनाए रखें। अब बेटा, तुम जानो, तुम्हारा काम, बस इतनी सी बात सदा याद रखना कि जिसने भँवर में से उठाकर तुझे बचा लिया, उसे अपने मन से कभी जाने न देना' और वह एक बार मुक्त कण्ठ से रो उठी, उसकी बूढ़ी आँखों से प्रसन्नता के आँसू बह कर जमीन पर गिरने लगे।

देवेन्द्र देर तक यह देखता रहा किन्तु क्रमशः वातावरण इतना वेदनामय हो गया कि उससे रहा न गया। ताँगे के आस-पास गर्दन झुकाए कई महिलाएँ सर नीचा किये मौन भाव से खड़ी थीं। एकाएक देवेन्द्र ताँगे से नीचे उतर पड़ा और तोषी की माँ के चरण छूते हुए उसने रुद्ध कण्ठ से कहा, 'माँ जी ! आप अपना मन दुःखी न करें। आपके दुःख के दिन अब लद गये। हम दोनों मिलकर आपके सारे

दुःखों को पी लेंगे···।'

जिसने भी उसकी बात सुनी सहानुभूति से वह उसके प्रति भर उठा, कई युवा लड़कियों ने ईर्ष्यापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा, कई ने मन-ही-मन कल्पना की 'हाय ! मुझे भी ऐसा ही वर मिले !'······ बुढ़िया ने देवेन्द्र की बात सुनी तो वह हर्ष में विह्वल हो उठी, उसके बूढ़े शरीर में एक अपूर्व शक्ति आ गई और उसने देवेन्द्र को गले लगा कर उसका माथा चूम लिया।

देखने वालों की आँखों में आँसू थे, और हृदय में वर के प्रति श्रद्धा ! ताँगा चलने को हुआ तो तोपी की माँ ने पास खड़ी औरतों की ओर देखते हुए, 'नी धियो मेरी कुड़ी ने की कसूर कीता जे···रब दे वास्ते अपणे मुख ते खोलो···' उसका अर्थ विदागान से था, सुनते ही औरतें लज्जा से लाल हो गईं। वे भावना में विदाई गीत गाना ही भूल गई थीं। शीघ्र ही सरों पर कपड़ा लिये सुमुखियों ने अपने सुमधुर कण्ठों को खोल दिया—

मेरी अज दी घड़ी रख डोली नीं माँ
रखां बाप दी बनके गोली नीं माँ
मेरी डोली नूँ लगड़े ने हीरे नीं माँ
मैंनूँ विदा करन अपने वीरे नीं माँ
मेरी अज दी घड़ी ....
मेरी डोली नूँ लगड़े ने, लाचे नीं माँ
मैंनूँ विदा करन, अपने चाचे नीं माँ

ताँगा आगे बढ़ चला, विदाई देने वाले गाते-गाते ताँगे के साथ बढ़ते गये—गीत गूँजता रहा।

मेरी अज दी घड़ी..............
मेरी डोली नूँ लगड़े ने काने नीं माँ
मैंनूँ विदा करन, अपने मामे नीं माँ
मेरी अज दी घड़ी..............

मेरी डोली नूँ लगड़े ने छापे नीं माँ
मैंनूँ विदा करन, अपने भापे नीं माँ
मेरी अज दी घड़ी...............

धीरे-धीरे ताँगा आगे बढ़ता गया, उसमें बैठी दो बरसती आँख पीछे को देखती रहीं। उसके बाल्य-काल की क्रीड़ा-स्थली पीछे छूटती जा रही थी और एक उदास सी दुनियाँ की ओर वह चली जा रही थी, जहाँ से उसके जीवन का नया अध्याय शुरू होगा।

इस घटना से चरणदास को जो चोट लगी, उसके घातक-प्रभाव से वे बच नहीं पाये। कई दिनों तक वे गुमसुम रहे, गाँव में किसी से मिलना-जुलना भी उन्होंने बन्द कर दिया। सत्यवती जब बहुत जोर देती तो वे दूध का आधा गिलास पी लेते, नहीं तो दिन भर चारपाई पर पड़े रहते। ज्योति को वे बहुत प्यार करते थे, इस कारण इस घटना में उसकी सहानुभूति देखकर भी अधिक समय तक वे उससे रुष्ट न रह सके। प्रायः पड़े-पड़े वे मिलखीराम और अजीत के बारे में सोचने लगते और उन्हें अनुभव होता कि उनके ही कारण गाँव के एक आदर्श व्यक्ति का परिवार मिट गया। वे सोचते, जाने अजीत कहाँ होगा, यदि किसी प्रकार भी वह मिल जाता तो वे आज भी अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लेते किन्तु अजीत का कहाँ पता चलता, निदान वे हताश से होकर बैठ जाते। यही हाल सत्यवती का था, वह घंटों कोने में मुँह छिपाए रोती रहती। उसे चरणदास की गिरती दशा को देख भय लगने लगा था। साथ ही जब वह ज्योति के उदास चेहरे की ओर देखती तो उससे अधिक देर उस ओर देखा न जाता। ज्योति का दमकता चेहरा मुरझाकर पीला पड़ गया था और उसकी आँखों के नीचे काले घेरे पड़ गये थे। उसे किसी चीज के प्रति मोह नहीं रह गया था। शरीर के सारे आभूषण उतारकर उसने रख दिये थे, हाथों में दो काँच की चूड़ियाँ और कानों में बालियाँ, यही उसके आभूषण थे। इन दिनों वह घर का सारा काम करती, यहाँ तक कि जिस काम में कभी उसने हाथ न लगाया, उसी को वह तत्परता से करती। माँ के बार-बार टोकने का भी उस पर कोई प्रभाव न होता। एक दिन सत्यवती ने यही बात चरणदास से कही तो वे और चिन्तित हो गये। बोले, 'सत्तो, मैं आराम

से मर भी नहीं सकूँगा।'

उनकी बात सुन सत्यवती की आँखों में आँसू आ गये। चरणदास के वक्ष पर अपना माथा रखते हुए उसने कहा, 'ऐसी बातें कहकर मुझ मरी को क्यों मारते हो ? उसके लिये कोई लड़का ढूँढ़ो, नहीं तो लड़की हम दोनों से पहले जायेगी।'

उसकी बात सुन चरणदास को कुछ चेत हुआ। उन्होंने सत्यवती के आँसू पोंछकर कहा, 'अच्छा, जाकर जरा लड़की को तो भेज।'

सत्यवती उठ गई। उसने ज्योति को बाप के पास जाने को कहा तो बिना कुछ पूछे, कोई जिज्ञासा किये ज्योति उसी प्रकार चरणदास की चारपाई के पास आकर बैठ गई। चरणदास ने उसे खूब जी भरकर देखा। वह सोच में पड़ गये। क्या यही वह ज्योति है, जो उनके घर को अपनी ज्योति से प्रकाशित करती थी ? इसकी वह सारी चमक-दमक मेरे ही कारण आज नष्ट होकर रह गई है। उन्हें साहस न हुआ कि ज्योति से कुछ पूछें, फिर भी साहस कर ज्योति के माथे पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, 'बेटी ! तू ऐसी क्यों होती जा रही है ?'

ज्योति ने गर्दन ऊपर न उठाई। उसी प्रकार कह दिया, 'मैं ठीक तो हूँ पिताजी ? आप नाहक मेरी चिन्ता में अपनी सेहत क्यों खोते जा रहे हैं ?'

चरणदास ने कहा, 'बेटी ! मेरी सेहत की तो बात ही न कर। आज नहीं तो कल मैंने जाना ही है, पर तेरा क्या होगा यही सोचता हूँ.......।' वे कुछ ठहर गये और फिर ठण्डी साँस खींचकर बोले, 'मैं जानता हूँ कि मैंने जो कुछ आज तक किया है, उससे तू दुःखी है। तेरा दुःखी होना सच भी है, पर बेटी जो हो गया वह क्या कभी वापस लौटकर आता है ?......अब मैं तेरी राय से ही सब कुछ करूँगा... तू जैसा कहेगी वही होगा, पर तू कुछ कह तो सही।'

पिता के म्लान मुख को देख, ज्योति का मन दया और करुणा से भर उठा। वह बोली, 'जान-बूझकर तो आपको कोई कष्ट दिया नहीं

है फिर भी कोई भूल हो गई हो तो आपकी ही बच्ची हूं । आपके पास दुःखी होऊँगी तो सुख कहाँ मिलेगा ? मैं बिलकुल ठीक हूँ, आप मेरी कोई चिन्ता न कीजिये ।'

'तू तो जानती है' चरणदास उसकी बातों में रुआँसे हो गये थे, उनके मुंह से बात नहीं निकल पा रही थी, फिर भी उन्होंने हृदय के उफान पर बलात नियंत्रण करते हुए कहा, '···तू तो जानती ही है कि लड़की पराया धन होती है । न चाहते पर भी कलेजे को चीरकर एक टुकड़ा अलग करना ही पड़ता है···।' वे फिर कुछ क्षण ठहर गये और फिर सर झुकाए ही कहते रहे, 'अजीत मिल जाता तो आज ही मैं उसके हाथों में तेरा हाथ दे देता । मिलखीराम के साथ किया वचन भी पूरा हो जाता पर अजीत को गये आज दो साल से ऊपर हो गये । उसका कोई पता नहीं है, बता, ऐसी हालत में मैं क्या करूँ ?'

अजीत की बात सुन ज्योति ने लज्जा से नजरें नीचे झुका दीं । उसी प्रकार वह बोली, 'आप बड़े हैं. मैं क्या कह सकती हूँ······जैसा आप कहें ···· !'

'तू कहे तो मैं कोई लड़का देखूं ?' चरणदास ने आशा भरे नेत्रों से ज्योति की ओर देखा ।

'आपको मुझे बाँधने की ही चिन्ता है तो जहाँ भी बाँध देंगे, मुझे कोई आपत्ति न होगी ।' ज्योति ने कहा, 'भला मैं माँ-बाप की आज्ञा से बाहर चली जाऊँगी ऐसी बात आपके मन में कैसे आ गई ?'

उसकी बातों के ढंग से चरणदास सहम गये । एक पढ़ी-लिखी लड़की की क्या यही इच्छाएँ होती हैं, माँ-बाप जो कह दें वही उनके ललाट की रेखा बन जाती है ? मन-ही-मन उन्होंने सोचा, उसका मन दुःखाकर वे कुछ भी न करेंगे। भले ही वह आजीवन कुँआरी बैठी रहे । गाँव के लोग उनके घर की बात के जिम्मेदार नहीं हैं । उन्होंने ज्योति के इस आत्म-समर्पण को वैसे ही लिया जैसे वधिकगृह में बँधी बकरी अपनी दशा का आभास हो जाने पर आर्तनाद करती है किन्तु कोई

उसकी भाषा नहीं समझ पाता। भावना को सभी समझते हैं और अपने स्वार्थों के आगे वे भावना को भुलाकर उसका बलिदान कर ही देते हैं।

चरणदास ने उठकर ज्योति के सिर को अपनी गोद में रखा, उसके बालों को सहलाया और फिर आँखों में स्नेह भर, वात्सल्य से सराबोर वाणी में कहा, 'बेटी ? तू ही मेरी बेटी है। तू ही बेटे के स्थान को रोके है। तेरी इच्छा के बिना कुछ भी न होगा। हाँ, एक बात तुझे जँचे तो कहूँ ?'

'कहिये।'

'एक तो तू यहाँ बैठे-बैठे ऊब गई है' चरणदास ने कहा, 'दूसरे तेरी मौसी को तुझे देखे एक साल से भी ज्यादा हो गया। तू क्यों नहीं कुछ दिन दिल्ली में रह आती। मौसी से भी मिल लेगी और जी भी कुछ हलका हो जायेगा।'

'हो आऊँगी' कहकर ज्योति अनमनी सी कमरे से बाहर आ गई। जीवन में कभी गति आयेगी, ऐसी तो उसने कल्पना करनी भी छोड़ दी थी। हाँ उसकी कुछ नीरसता दिल्ली जाने से दूर हो जायेगी यही सोचकर उसने मन में सन्तोष किया। किन्तु चरणदासजी की इस इच्छा में भी एक बात थी। शायद इसी से कोई युक्ति कामयाब हो जाए यह सोचकर उसी दिन उन्होंने दिल्ली को एक पत्र लिख दिया। जिसमें कुशल समाचार के बाद ज्योति की मनस्थिति और उसके योग्य कोई अच्छा सा वर तलाश करने का भी संकेत कर दिया। अगले ही दिन ज्योति अमृतसर से पठानकोट एक्सप्रेस में बैठ गई।

संतोष के पत्र तो जालन्धर से आते थे किन्तु उससे मिले बहुत दिन हो गये थे। वह घर से ही जालन्धर में सन्तोष से मिलने का निश्चय करके चली थी किन्तु इस बारे में उसने किसी से कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप जालन्धर स्टेशन पर उतर गयी। रात के बारह बज रहे थे। अटैची उठाकर वह बाहर आई और उसमें से संतोष का पता

देख, एक ताँगे में सिविल लाइन के लिए बैठ गई। जब स्टेशन से ताँगा रेलवे पुल के नीचे होते हुए सिविल लाइन की ओर बढ़ा तो चारों ओर व्याप्त नीरवता को देख उसे भय अवश्य लगा किन्तु शीघ्र ही वह कहीं तिरोहि। हो गया। तांगे वाले ने उस नम्बर के क्वार्टर को ढूँढ़ने में काफी श्रम किया आखिर वह मिल ही गया।

ताँगे को किराये से एक रुपया और अधिक देकर वह अपनी अटैची ले एक बन्द फ्लैट पर दस्तक देने लगी। काफी देर के बाद दरवाजा खुला। बिजली के प्रकाश में वह स्लीपिंग सूट पहने देवेन्द्र को तुरत पहचान गई। देवेन्द्र ने भी इस प्रकार अर्धरात्रि में ज्योति को अकेली देख विस्मय प्रकट किया। क्षण-भर तक वे दोनों एक-दूसरे को देखते रहे तब कहीं ज्योति को अपनी भूल का पता चला। हड़बड़ा कर उसने नमस्ते की तो देवेन्द्र को भी अपनी भूल अनुभव हुई। प्रत्युत्तर में हाथ जोड़, उसने ज्योति के हाथ से अटैची ले ली और कमरे में आकर संतोष को जगाया, 'तोषी ! गाँव से बहनजी आई हैं।'

संतोष अस्त-व्यस्त स्थिति में ही उठ खड़ी हुई, ज्योति को देख उसने अपने वस्त्र ठीक किये और फिर तेजी से वह उससे चिपट गई। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे किन्तु वह यह न जान पाई कि यह दुःख के आँसू थे या प्रसन्नता के। बहुत दिनों बाद वह तोषी से मिली थी। उसकी तोषी को सुखी देखने की जो लालसा थी उसे देख उसके मन की प्रसन्नता आँखों की राह बाहर निकल आई। वे देर तक एक दूसरे की बाहुओं में आबद्ध अपनी आत्मा की पीड़ा का अवसाद आँखों की राह निकालती रहीं। जब कुछ वेग शान्त हुआ तो बिजली के प्रकाश में ज्योति का सर्वांग निरीक्षण करती हुई संतोष ने रुद्ध कण्ठ से कहा, 'दीदी ! तुझे यह क्या हो गया ? मुझ बदनसीब को जीवन देकर तूने खुद मरने की ठान ली है क्या ?'

ज्योति ने पास ही चित्रलिखे से खड़े देवेन्द्र की ओर देखा और फिर स्वयं की भावनाओं पर नियंत्रण करते हुए वह बोली, 'पागल न बन

तोषी ! अपने को बदनसीब कहने का अब तेरा कोई अधिकार न रहा, तेरे साथ और भी किसी का नसीब बँधा है। रही मेरी बात, सो तूने न जाने मुझमे ऐसा क्या देख लिया जो तू दुःखी हो रही है। मैं तो जन्म से ही ऐसी रही हूं। न चर्बी पहले चढ़ी थी न अब चढ़ी है।'

उसके उत्तर से संतोष तब संतुष्ट होती जब वह उसकी मन-स्थिति से अनभिज्ञ होती. उसके आगे तो ज्योति का हृदय खुला पड़ा था। इच्छा होते हुए भी उसे इस चर्चा को यहीं समाप्त कर देना पड़ा। कुछ पल के मौन को भंग करते हुए संतोष ने पूछा, 'सुना घर से ही आ रही है न ?'

'हां', ज्योति ने कहा 'मौसी से मिलने दिल्ली जा रही थी; सोचा तुझे देख लूं।' फिर ओठों पर एक भीनी-सी मुस्कान बिखेरती वह बोली तेरी गृहस्थी कैसी चल रही है यह भी तो देखना था न, सो आज देख लिया।' उसने यह कहकर हँसते हुए देवेन्द्र की ओर देखा, जो लजा कर गर्दन झुकाए था।

संतोष ने फिर पूछा, 'और सुना सब ठीक तो हैं न ?'

'हाँ, पिताजी और माता जी ठीक ही हैं।' ज्योति ने कहा, 'चाची से चाहने पर भी मिल न सकी इसका दुःख है।'

'अरे छोड़।' संतोष ने कहा 'माँ मजे में है। कल ही तो खत आया है। अब सोचती हूं मा को यहीं ले आऊँ पर वह मानती ही नहीं।'

देवेन्द्र जो अब तक चुप बैठा था सहसा बोल उठा, 'तुम तो सारी बातें पूछने पहले बैठ गयीं। कुछ खाने-पीने का तो करो।'

ज्योति ने हँसी में कह दिया 'इसके हाथ का तो कई बार खाया है, आज तो आपके हाथ से ही एक प्याला चाय पीने की इच्छा है।'

'चाय तो आप पीयेंगी ही', उसने कहा, 'मैं तो और चीज के बारे में कह रहा था।'

'और कुछ नहीं जीजा जी !' ज्योति ने कहा, 'मैं घर से छक कर चली हूं। साथ में पूड़ियाँ भी बाँध लाई हूँ आप लोगों के लिए।'

इस सम्बोधन को सुन देवेन्द्र शरमा गया फिर भी उसने मन की बात कह दी, 'इस सम्बोधन के योग्य मैं तो हूँ नहीं बहन, न ही यह मुझे चाहिए। आप तो जहाँ तोपी की बहन हैं वहां मुझे भी उस स्थान से दूर क्यों करती हैं ?'

ज्योति ने कहा, 'आप तो बहने लगे'''जैसा आप चाहेंगे वही होगा, इतनी-सी बात पर 'सीरियस' हो गये ?'

बातों का क्रम बन्द हुआ तो वादे के अनुसार देवेन्द्र स्टोव पर चाय बनाने चला गया। यह देख ज्योति संतोष को लिए रसोई में ही चली गई। बड़ी कठिनाई से वह उसे रोक सकी। संतोष ने स्टोव जलाया और चाय का पानी रख दिया।

सारी रात दोनों सहेलियाँ जागती रहीं, जितनी अनुभूतियाँ एक दूसरे से बिछड़ने के बाद उनके अन्तर में जमा हो गयी थीं, वे सभी परस्पर उन्होंने एक दूसरे पर व्यक्त कर दीं। देवेन्द्र दूसरे कमरे में जाकर लेट गया।

रात बीती, सवेरा हुआ। उस सारे दिन ज्योति ने स्वयं को काफी हल्का अनुभव किया। बातों-ही-बातों में सारा दिन कट गया। उसी रात वह स्टेशन पर आ गई। दोनों उसे छोड़ने आये थे।

स्टेशन पर ज्योति को विदा करते हुए तोपी ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। आँसुओं से ज्योति की कुर्ती वक्ष पर गीली हो गई। उसने हिचकी भर कर कहा, 'दीदी ! क्या तुम मन को मोड़ नहीं सकतीं, ऐसे तो तुम मर जाओगी !'

'मैं ठीक हूँ तोषी !' ज्योति ने उमड़ते आँसुओं को जैसे कोरों में ही रोक लिया वह गाड़ी में बैठती हुई स्नेह भरे स्वर में बोली, 'तू अपने संसार को ठीक से संवारे रख। तुझे सुखी देख कर ही मैं खुश हूँ।'

तोपी जोर-जोर से रोने लगी, देवेन्द्र की भी आँखें सजल हो आईं। ज्योति से यह सब सहा नहीं गया। वह पायदान पर खड़ी हो कर बोली,

'देख नादान न बन ! तू यह सोचती है कि ऐसी हालत में मैं सही सलामत दिल्ली तक पहुँच जाऊँगी···देख हँसकर विदा दे मुझे···'

आंखों में आँसू भरे थे, उनकी कोरों से बूँदें चू रही थीं, फिर भी उसके ओठों में एक नकली मुस्कान खेल गई—यह मुस्कान ऐसी ही थी, जैसे वर्षाकाल के सूर्य की होती है। वह समस्त दिवस बादलों की छाँह में छिपा रहकर कभी-कभी कुछ क्षणों के लिए अपनी किरणें छिटका जाता है।

तोपी ने ज्योति के पैर छू लिए। ज्योति के आपत्ति करने पर भी वह अपने को न रोक सकी, अन्ततः उसे प्यार भरी स्नेहाशीष देनी ही पड़ी। ट्रेन ने सीटी दे दी थी। देवेन्द्र ने भी हाथ जोड़कर ज्योति को नमस्ते किया और फिर वे तीनों तब तक एक-दूसरे को देखते रहे जब तक ट्रेन प्लेटफार्म को पार न कर गई।

१०

जब तक मनुष्य किसी के सहारे जीता है, तब तक वह निश्चित-सा रहता है। जान-बूझकर कोई खतरा मोल लेने की वह तब बात भी नहीं सोच पाता किन्तु जब समय उसके आड़े आता है और स्वयं वह बेसहारा होता है तब या तो वह आत्म-हत्या कर लेता है या जीवन से कोई मोह न रख, कांटों भरी राह पर चलने लगता है। उसका तब कोई लक्ष्य नहीं होता किन्तु आँधियों की बाढ़ में अनायास ही उसे लक्ष्य मिल जाता है।

अजीत जब गांव से चला था तब उसके जीवन का विशेष कोई लक्ष्य न रह गया था, केवल एक आक्रोष, एक झुँझलाहट उसके मन में थी। अपने पिता के बलिदान और अपनी माँ की प्यारी मिट्टी को मुक्त करने की एक तीव्र लालसा भी वह अन्तर के किसी कोने में दबाये था। इस सब के बाद एक मीठी-सी स्मृति भी वह जीवन में लिए था और वह थी ज्योति की स्मृति, उसके व्यवहार की मिठास, उसके अनुराग की हलकी-वेदना! इस सबके बाद भी जहाँ वापस गाँव आने और अपने आदर्श की पूर्ति के विचार उसके मन में थे वहाँ ज्योति को पा सकने की झूठी आशा को उसने अपने हृदय में पनपने न दिया। उसके लिए ऐसी कल्पना भी दुःखद थी और उस कल्पना को एक बार मन में प्रश्रय दे कर वह उसको चूर-चूर होते देखना भी नहीं चाहता था।

गाँव से आकर वह कुछ दिनों तक दिल्ली में रहा और फिर कलकत्ता चला गया। कलकत्ता उसके भविष्य को बनाने में अधिक सहायक सिद्ध हुआ। उसने वहाँ एम० ए० तक की शिक्षा प्राप्त की, शिक्षाकाल में ट्यूशनें करके अपना गुजारा चलाया और अब वह विद्यासागर कालेज में प्रोफेसर था। अपने गंभीर व्यक्तित्व और सरल शिष्टाचार के कारण

शीघ्र ही वह एक ऐसी दुनिया में खो गया, जहाँ चिन्ताएं नहीं होतीं, केवल ज्ञान प्राप्ति और प्रगति की भूख होती है।

वह डेढ़ वर्ष से बागबाजार के एक बंगाली परिवार में रह रहा था, जिसके तीन सदस्य थे। एक उस घर की मालकिन श्रीमती पूर्णिमा दास गुप्त, एक उनकी लड़की दीप्तिप्रभा और एक उनके स्वर्गीय देवर का लड़का। पूर्णिमा के पति उसे आज से सात वर्ष पूर्व अकेली छोड़ गये थे, उसकी वयस अब पैंतालिस के घेरे को पारकर चुकी थी। दीप्ति बी. ए. की छात्रा थी, वह भी उन्नीस के घेरे को लाँघ चुकी थी। सुनील अभी तेरह वर्ष का ही होगा वह भी छठी में पढ़ रहा था। मकान तीन मंजिला था, जिसके तीन कमरों को छोड़कर बाकी सभी कमरे किरायेदारों को दिए हुए थे। इन तीन कमरों में से एक में अजीत का निवास था और बाकी के दो में से एक दीप्ति के पढ़ने का कमरा और दूसरा पूर्णिमा के उठने-बैठने और सोने के लिए था।

अजीत जब पहले-पहल इस मकान में कमरा देखने आया था तब में और अब में बड़ा अन्तर था। तब पूर्णिमा ने उसे गौर से देखने के पश्चात् कहा था, 'भाई! बिना बाल-बच्चों के यहाँ तो तुम्हारा निभाव न हो सकेगा।'

उसने कहा था, 'माँ जी! तीन महीने से मकान ढूँढ़-ढूँढ़ कर तंग आ गया हूँ। कोई बुरा आदमी भी नहीं हूँ, अपना ही जैसा घर समझ कर रह लूंगा। अभी तो खुद ही बच्चा हूँ बाल-बच्चे कहाँ से लाऊँ?'

न जाने क्या बात थी कि अन्ततः पूर्णिमा देवी ने उसे पैंतीस रुपये में अपने पास वाला कमरा दे दिया। प्रारम्भ में कई मास तो वे उसकी गतिविधियों पर दृष्टि रखे रहीं किन्तु उन्होंने कोई ऐसी बात उसमें न देखीं, जिनपर आपत्ति की जा सकती थी। वह जब घर में रहता तब गर्मियों में भी किवाड़ें चढ़ा कर अपनी पढ़ाई में लगा रहता और जब नीचे उतरता तो नजरें झुका कर, ताकि वह किसी को देख भी न सके।

इन बातों को अब डेढ़ वर्ष होने को आया किन्तु पूर्णिमा के लिए वह अब पराया नहीं रहा। माँ-बाप की विहीनता और मातृत्व की भूख, जो सदा उसकी आँखों में झलका करती, उसे कुछ ही दिनों में इस परिवार के बीचों-बीच ले आई। वह सभी दुःखों और सुखों में पूर्णिमा का साथ देता है, घर की व्यवस्था, जमीन जायदाद के मामले सभी उसके द्वारा होते हैं। इन सब कामों के बीच वह कालेज भी जाता है। घर पर समय मिलने पर दीप्ति को पढ़ाता भी है। अनील को डाँटता भी है, प्यार भी करता है और जब कभी पूर्णिमा बीमार होती है तो उसके पैरों पर बैठ कर सेवा भी करता है। कभी-कभी जब वह इस सम्बन्ध पर विचार करता है तो उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं। श्रद्धा से वह पूर्णिमा के प्रति मन-ही-मन नत हो जाता है। इतने बड़े संसार में आज वह अकेला नहीं है, वह है—उसकी माँ-बहन और भाई हैं, और उसे किसी सम्पदा की आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी जब वह उदास होता है, अतीत की स्मृतियाँ उसके मानस-पटल पर करवटें ले रही होती हैं तब पूर्णिमा उसके पास आ जाती है। उसके माथे पर हाथ फेरती हुई वह बोल उठती है, 'क्यों रे! यह कैसा हाल बनाया हुआ है?'

'ठीक तो हूँ मैं' कह कर वह अपनी चोरी पकड़ी गई देख कृत्रिम मुस्कान मुख पर ले आता है किन्तु पूर्णिमा की अनुभवी आँखों से उसकी पीड़ा छिप नहीं पाती।

'देख' वे कहती है, 'मैंने तुझे गर्भ में धारण नहीं किया, यही जान कर यदि तू माँ का स्थान मुझे नहीं देना चाहता, तो बेटा जोर-जबरी से वह मैं चाहूँगी भी नहीं। स्नेह माँगने या जोर देने से तो प्राप्त नहीं होता, वह तो कुदरत की देन है।'

उसके मुख पर शिशु के से कोमल भाव उमड़ आते है, वह आवेग को रोक नहीं पाता और अपना सिर पूर्णिमा की गोद में छिपा कर सुबकते हुए कह उठता है, 'माँ! ऐसा कह कर मेरे मन के शीशे को क्यों तोड़ती हो?'

'तब तू बताता क्यों नहीं कि यह उदासी क्यों है ?'

'मन की स्मृतियों में डूब जाना भी कोई अपराध है ? इसी में यदि कुछ उदासी सी आ गई तो कौन-सी बड़ी बात है ?' वह कहता, 'इतनी सी बात का इतना बड़ा दण्ड यदि आप देने लगें तो क्या यह उचित है ?'

उसकी भोली बातों को सुन पूर्णिमा को लगता जैसे उनके वक्ष में दूध उतर आया हो। वे आंखों की पलकों में ही मातृत्व के आँसू रोक लेतीं और फिर अजीत के माथे को चूम कर उसे अपने हाथ से खाना खिलातीं। इस प्रकार एक परिवार में सर्वथा दूसरे प्रान्त का, दूसरे माँ-बाप का लड़का यों प्रकार मिल गया जैसे वह बचपन से ही इस तीन मंजिला भवन को इसी प्रकार देखता आ रहा है।

उस दिन कालेज से आकर वह पहले सीधा पूर्णिमा के कमरे में गया किन्तु वहाँ दीप्ति के साथ एक अन्य लड़की को देख वापस अपने कमरे में आया और बैठ कर रोडियो खोल दिया।

अभी वह बैठा ही होगा कि दीप्ति ने तेजी से उसके कमरे का पर्दा उठाते हुए शरारत के स्वर में कहा, 'ए प्रोफेसर साहब ! आप तो वहाँ से ऐसे भाग आए जैसे वहाँ कोई शेर बैठा हो। चलिये माँ बुलाती हैं।'

उसने कह दिया, 'अच्छा चल। मैं आता हूँ।'

दीप्ति ने कहा, 'अभी नहीं, इसी वक्त। माँ ने कहा है।' अपनी बात के अन्त में वह फिर एक बार उसी प्रकार मुस्करा दी।

अजीत शरमाता हुआ आया और बिना किसी की ओर देखे ही पूर्णिमा के पास बैठ गया। उसे इस प्रकार बैठे देख उन्होंने सहास्य कहा, 'यह बचपना छोड़ दे बेटा ! अब तू तो लड़कियों को भी मात दे गया।' कुछ क्षण ठहर कर वे पुनः बोलीं, 'हाँ, इससे तेरा परिचय कराना तो भूल ही गई ! मंजु मुखर्जी। अरे वही अपने देव बाबू की लड़की। बेचारी बड़ी अच्छी है···दीप्ति की तो पुरानी सहेली है। अब तक बर्दवान में थी अब कालेज में दाखिल होने यहाँ आई है।'

अजीत ने पलकें ऊपर उठाईं, एक पल के लिये उसकी ओर देखा और फिर दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते की। प्रत्युत्तर में उसने भी हाथ जोड़ कर ही उत्तर दिया।

कुछ देर बैठ कर वह चली गई। दीप्ति उसे ट्राम तक छोड़ने गई और आते ही उसने अजीत को चिढ़ाने की मुद्रा में कहा, 'क्यों जनाब, पसन्द है भाभी ?'

पूर्णिमा ने अनुराग भरे भाव से अजीत की ओर देखा। अजीत को दीप्ति की वह बात अजीब सी लगी। उसने आँखें तरेर कर कहा, 'दिमाग तो सही है तेरा ?'

'दिमाग मेरा तो ठीक है।' वह उसी स्वर में बोली, 'अपनी बात जरूर बता दो, क्योंकि मंजु है ही ऐसी। उसे देख कर अच्छे-अच्छों के दिमाग चकरा जाते हैं।'

अजीत ने पूर्णिमा की बाँह पकड़ते हुए कहा, 'देखिये माँ, इसे समझा दीजिये। फिर यह नाहक रोती फिरेगी !'

पूर्णिमा ठठा कर हंस पड़ी। उसके सफेद मोतियों जैसे दाँत चमक गये। हँसी का वेग कम होने पर बोली, 'वह कोई गलत बात तो नहीं कर रही। आखिर तू यों ही बैठा नहीं रहेगा ? मैंने तो खूब सोच समझ कर मंजु का चुनाव किया है !'

'आप भी हँसी करने लगीं माँ !' अजीत ने सकुचाते हुए कहा।

'अरे मैं क्यों हँसी करूंगी।' पूर्णिमा ने कहा, 'उसे दिखाने के लिये ही तो आज बुलाया था। ठीक तरह से देख भी ली थी या नहीं ?'

'छोड़ो भी माँ' कह कर अजीत उठने लगा तो पूर्णिमा ने उसे बाँह पकड़ कर नीचे बिठा लिया। वह तनिक गम्भीर होकर बोलीं, 'बेटा ! अब अधिक दिन तुम्हें अकेला न देख सकूँगी। इसी बात पर हाँ कर दो।'

'आपके रहते हुए भी मैं अकेला हूँ माँ ?' अजीत ने कहा।

पूर्णिमा ने वात्सल्य से विभोर होकर कहा, 'मैं सदा इसी तरह तो

जीवित नहीं रहूंगी रे ! आज नहीं तो कल, परवाना आ ही जायगा तब तू क्या करेगा बता तो ?'

'मैं आपसे पहले चला जाऊँगा' अजीत ने कहा और उसकी पलकें भारी हो गईं ।

'ऐसी बात की तो चाँटा मारूंगी।' अधिकार भरे स्वर में पूर्णिमा ने कहा, 'माँ की बात टाल कर क्या तू सुखी रह सकेगा ?'

उनके गम्भीर मुख की ओर देख कर अजीत ने कहा—'नहीं माँ, जिस दिन आपकी आज्ञा टाल देने की बात आयेगी उस दिन इस धरती पर मेरे लिये फिर ठौर नहीं रहेगी ।'

पूर्णिमा के मुख पर मुस्कान आगई । उसी भाव से वे बोलीं, 'तब ठीक है । कल ही देव बाबू से हाँ कह दूँगी ।'

अजीत ने कोई प्रतिवाद न किया, यह देख वे उठ गईं । आलमारी से एक प्लेट में रसगुल्ले लाकर एक उन्होंने अजीत के मुँह में डाल दिया, एक दीप्ति के और एक वह स्वयं खा गईं ।

अजीत बाहर जाने लगा तो दीप्ति ने छेड़ा, 'आखिर फंस ही गये जनाब !'

अजीत ने हंसते हुए कहा, 'तू चिन्ता न कर, जल्दी ही तुझे भी ठिकाने लगा कर ही दम लूँगा ।'

यह सुन पूर्णिमा को एक आत्मिक शान्ति सी अनुभव हुई किन्तु दीप्ति शरमा कर छत पर भाग गई ।

११

दिल्ली में पूसा रोड के पास ज्योति की मौसी का बंगला था। उसके मौसा वकील थे और दिल्ली में उनकी वकालत खूब चमक पर थी। परिवार में उनके दो लड़कियाँ और थी। एक तो एम०ए० फाइनल की छात्रा थी विभा और दूसरी प्रभा मैट्रिक के बाद प्रभाकर पास करके बैठ गई थी। दोनों ही विवाह के योग्य हो गई थीं किन्तु बाबू कृष्ण-लाल को कोई योग्य वर ही दिखाई न देता था। किसी भी घर में लड़की को फेंक देना उन्हें पसन्द न था। अतः आजकल करके समय बीत रहा था। ज्योति की माँ का स्वभाव जितना ही कोमल और वेदनाशील था उसकी मौसी नर्मदा उतनी ही कठोर और पुराने विचारों की महिला थी। बहुत जोर देने पर स्त्री शिक्षा की बात तो वह मानने लगी थी किन्तु यह उसे सह्य न था कि लड़कियों को पूर्णतः उनकी इच्छा पर छोड़ दिया जाए। घर पर आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वे सन्देह की दृष्टि से देखतीं और ऐसे समय में यदि कोई लड़की बाहर होती तो उसे डाँट कर भीतर भेज देतीं।

ज्योति बाल्यावस्था से ही गाँव की स्वतन्त्र जलवायु में पलकर बड़ी हुई थी निर्द्वन्द्व हो उसने कालेज में शिक्षा प्राप्त की थी और समय की चोटों के पड़ने से अब वह और भी स्वतन्त्र हो गई थी किन्तु यह स्वतन्त्रता उच्छृंखलता की श्रेणी में न थी। यह वही ही थी जो एक सुलझे विचारों की नारी की विशेषता होनी चाहिये। दिल्ली आकर ज्योति को कुछ ऐसा लगा जैसे यहाँ वह रूढ़िवाद के बन्धनों में बुरी तरह फँस गई है। यहाँ की एक-एक बात उसे अजीब सी लगती।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये और जब वह अपने को इस वाता-वरण के अनुकूल बना पाई तो एक नया क्रम प्रारम्भ हुआ।

एक दिन चार बजते ही मौसी ने ज्योति से कहा, 'बेटी ! आज तेरे मौसा जी सर्कस देखने को कह रहे थे। तू अभी कपड़े बदल डाल तो अच्छा होगा।'

ज्योति ने देखा उसकी बहनें तो अभी आई नहीं हैं, क्या वह अकेले ही जायगी ? उसने पूछा, 'मौसी जी ! क्या मैं अकेली ही जाऊँगी ? विभा और प्रभा का तो अभी तक पता भी नहीं है।'

मौसी चतुर थीं, बोलीं, 'वे आ जाएँगी तो चली जाएँगी। तू तो तैयार हो।'

अनमनी सी ज्योति कपड़े बदलने चली गई। उसने एक धानी रंग की साड़ी पहनी और उस पर एक धानी ही रंग के क्रेप का ब्लाउज। हाथों में दो चूड़ियाँ डालकर साधारण ढंग से बाल संवार लिये। तैयार होकर वह बैठ गई। कोई साढ़े चार बजे होंगे, जब कृष्णलाल जी की एम्बेसेडर कार फाटक के पास आकर रुकी। उसमें से पहले तो वकील साहब उनके बाद में एक युवक। युवक की आयु कोई २६-२७ वर्ष के दायरे में होगी। वह गेहुँए से रंग का सुन्दर और हँसमुख लड़का था। सफेद जीन की पैन्ट और रेशमी कोट के साथ चार खाने की टाई उसके आकर्षण को बढ़ा रही थी। डील-डौल में वह भरा-पूरा था। यदि कोई दोष उसमें आकर्षण की दृष्टि से था भी तो केवल इतना ही कि उसके सर के बाल उतने घने न थे। चाँद के बीच में कुछ फासला छोड़कर बालों का क्रम था।

मोटर की आवाज सुनते ही नर्मदा बाहर आ गई। हँसकर उसने आगन्तुक का स्वागत किया। आगे कृष्णलाल पीछे वह आगन्तुक और सबसे बाद में ज्योति की मौसी। दालान में, जहाँ कई कुर्सियों के बीच एक कुर्सी पर बैठकर ज्योति कोई पत्रिका पढ़ने में लीन थी—कृष्णलाल जी ने आते ही साथ वाले युवक से कहा, 'हाँ, ये हैं मेरी भतीजी ज्योति ! हाल ही में अमृतसर से आई हैं। बी० ए० तक पढ़ भी गई हैं, आगे भी इरादा है··· 'फिर ज्योति की शंकास्पद दृष्टि को लक्षित

कर कहा, 'आजकल जमाना तड़क-भड़क का है। कौन है जो उसमें बहने से बचा हो, पर इस बेचारी को तो जैसे उसकी छाया तक नहीं छू पाई।'

जैसा कि शिष्टाचारिक परिचयों में होता है, उस युवक ने ज्योति को अभिवादन किया और ज्योति ने गर्दन झुकाए ही प्रत्युत्तर दे दिया।

फिर इधर-उधर की बातें छिड़ गईं। राजनीति पर बातें चलीं, वर्तमान सामाजिक स्थिति और पुरातन संस्कृति की तुलना की गई। बातों-ही-बातों में आगन्तुक ने वकील साहब से कहा, 'कुछ भी हो वकील साहब! जमाना चाहे कहीं भी जाए, फिर भी आप में कुछ अपनापन तो होना ही चाहिये···मेरा मतलब है अपनी सभ्यता को आपको 'प्रिफ़रेंस' देना ही होगा···'

अपनी बात कहकर उसने ज्योति की ओर देखा। वह इस दृष्टिक्षेप का अर्थ समझती थी। उसके जी में आया कि इसी बात पर उसकी खबर ले और कहे कि अभी तो आप पूरे अंग्रेज बने हुए हैं। बात-बात में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, वेश-भूषा अंग्रेजी, रहन-सहन अंग्रेजी सभी कुछ पाश्चात्य, और ऊपर से उपदेशों की यह लच्छेदार खुराक!

मन में होते हुए भी वह कुछ कह न सकी। तब तक चाय और जलपान के लिये प्लेटों में सजकर मिठाई आदि आ गई। चाय के बीच में भी बातों का क्रम जारी रहा। ज्योति को लगा कि आगन्तुक व्यक्ति कमलकान्त वह सभी ऊँची-ऊँची बातें केवलमात्र उसे सुनाने के लिये कह रहा है और उसके मौसा जी उसकी इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दे रहे हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस बात के पीछे कोई ऐसी भावना काम न कर रही हो जो शादी से सम्बन्ध रखती हो। उसकी यह धारणा तब और भी दृढ़ हो गई जब उसके मौसा जी ने उसे सर्कस चलने के लिये कहा और साथ में कमलकान्त को भी ले लिया गया! विभा और प्रभा का अब तक घर से बाहर रहना, मौसी जी द्वारा चार ही बजे से उससे कपड़े बदलने के लिये कहना और फिर यह सर्कस की तैयारी!

सभी कुछ योजनावद्ध उसके मस्तिष्क में घूम गया। उसने जाने से कई बार असहमति जताई किन्तु वकील साहब और मौसी के आग्रह-रूपी आदेश को वह टाल न सकी। अतः अनिच्छा से उसे जाना ही पड़ा।

लालकिले के परेड ग्राउण्ड में विशाल 'जैमिनी सर्कस' प्रथम बार आया था। कार पार्क में कार को खड़ी करके कृष्णलाल ज्योति और कमलकान्त को लेकर टिकिटघर की खिड़की पर आये। ज्योति ने एक बार सर्कस के विशाल घेरे को देखा, और फिर उन दर्जनों खोंमचे वालों की ओर, जो अपने गले की विभिन्न आवाजों का सहारा लेकर ग्राहकों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे—जैसे उनके माल का इतना महत्व न हो जितना उन आवाजों का। टिकिट लेकर कृष्णलाल सबके साथ आगे के एक रिजर्व क्लास के कोच पर बैठ गये उन्होंने ज्योति को बीच में बिठाया आप एक ओर बैठे और कमलकान्त दूसरी ओर।

कुछ ही देर में 'ड्रम पेयर' ने बैण्ड प्रारम्भ किया और पाश्चात्य संगीत की एक लहर-सी तम्बू में वह गई। यह क्रम कोई पाँच मिनट तक रहा, एनाउन्सर की घोषणा के पश्चात् ही तेज प्रकाश वाली बत्तियाँ बुझा दी गईं। केवल स्टेज की बत्तियाँ जलती रहीं। सर्वप्रथम एक छकड़ा कार से सम्बद्ध हास्यरस का दृश्य था, जिसमें यह दिखाया गया था कि उस कार का कोई भी भाग नियन्त्रित नहीं है। कभी चलते-चलते कार के दो भाग हो जाते तो कभी एक धमाके के साथ अगले मडगार्ड छिटककर दूर जा पड़ते। कभी टायर से हवा निकल जाती तो कभी खाली स्टेयरिंग ड्राइवर के हाथ में होता और ड्राइवर उसे लेकर खड़ा हो जाता। यद्यपि इस दृश्य के बीच तम्बू में हँसी के ठहाके खूब गूँजते रहे, वकील साहब और कमल कान्त तो कई बार हँसते-हँसते बेहाल भी हो गये किन्तु ज्योति के लिये जैसे यह सब कुछ नहीं था। वह आँखें स्टेज की ओर गड़ाए थी किन्तु उसके मुख पर कोई उत्सुकता का भाव न था। उसकी इस नीरसता को शायद कमलकान्त ने भाँप

लिया। वह काफी देर तक तो वकील साहब की ओर देखता रहा और फिर उन्हें खेल में तन्मय देख उसने अत्यन्त ही धीमे स्वर में ज्योति के कानों के पास अपना मुँह स्वभाविक रूप से ले जाते हुए कहा—

'आप बोर तो नहीं हो रहीं ?'

ज्योति को उसके दुस्साहस पर कोई विस्मय न हुआ क्योंकि वह मनोविज्ञान की छात्रा रह चुकी थी और उसे पता था कि कुछ विशेष प्रकृति के लोग किस प्रकार एक युवती के निकटतर आने की चेष्टा करते हैं। उसने उत्तर न दिया केवल सर हिला कर उसकी बात पर असहमति प्रकट की।

कमलकान्त ने पुनः उसी प्रकार धीमे स्वर में कहा, 'आप परेशान सी हैं।'

ज्योति ने इतने ही धीमे में कह दिया, 'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।' सहसा उसने देखा कि उनकी बातों को वकील साहब ने लक्ष्य कर लिया किन्तु शीघ्र ही वे इतने गम्भीर हो गये जैसे उन्होंने कुछ देखा ही न हो।

खेल चल रहा था। अब रूसी लड़कियाँ अपने सुगठित अँगों का प्रदर्शन कर जिमनास्टिक के अभ्यास दिखा रही थीं। वे सब अपने साथी युवकों के अलिंगन में बंधती, अपने नारीजात अंगों को निर्विकार-भाव से युवक खिलाड़ियों के अँगों से सटाती और फिर इस प्रकार शरीर को मोड़तीं जिसे देख कुछ सस्ती कोटि के दर्शक अपने आपे से बाहर होकर हर्षनाद कर उठते मानो उनके शरीर में फुरहरी हो रही हो। उच्चकोटि के दर्शकों के सोचने का स्तर दूसरा ही होता। ज्योति उन्हें देख सोचने लगी, 'शायद इनके मन की समस्त इच्छायें मर गई होंगी।' यह बात थी भी सत्य।

इस बीच तेज प्रकाश जगमगा उठा। घोषणा की गई कि दस मिनट बाद ही दूसरा खेल प्रारम्भ होगा। तम्बू में शोर शुरू हो गया। बीड़ी-पान वालों की आवाजें गूँजने लगीं और कुछ लोग तब तक के लिए

बाहर चले गये। लोगों को उठते देख वकील साहब भी बैठे न रह सके। उन्हें इस अवसर की तलाश भी थी।

वकील साहब का उठ कर जाना ज्योति को बुरा तो लगा, किन्तु उसके बुरे-भले को किसने आज तक अनुभव किया था, अतः सदा के समान वह चुप ही बैठी रही। उसके जाने के बाद ही कमलकान्त कुछ ज्योति की ओर को सट कर बैठ गया, ज्योति कुछ आगे सरक गई तो उसने और आगे खिसटने की चेष्टा करते हुए कहा, 'आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूं ?'

लज्जा से ज्योति का मुख मण्डल आरक्त हो गया, उसने अपनी खीझ को रोकते हुए कहा, 'पूछिये !'

'मैं बहुत साफ आदमी हूँ' उसने कहना प्रारम्भ किया, 'आप भी कहेंगी कि अजीब आदमी है···पर क्या करूँ आदत की बात है' वह कुछ सकुचाया और उसी सकुचाहट भरे स्वर में उसने कहा, '···वकील साहब आपके साथ मेरे सम्बन्ध की बात कर रहे थे···आपकी तारीफ भी बहुत सुनी थी···पाया भी वैसा ही······।'

ज्योति को उन बातों से पसीना छूट रहा था। वह उठ जाना चाहती थी किन्तु एक विवशता थी, जो उसे बलात रोके हुए थी, मन-ही-मन वह उस घड़ी को कोस रही थी, जब वह पिताजी के कहने पर दिल्ली आई थी।

कमलकान्त ने फिर कहा, '··· पर आपकी हालत को देख कर मैं कुछ समझ नहीं पा रहा। आपको वास्तव में क्या कोई परेशानी है, या आपकी आदत ही ऐसी है ? यह भी मैं जानना चाहता था कि मुझ जैसे आदमी में आपकी दिलचस्पी भी है या नहीं ?'

ज्योति से रहा न गया। क्रोध, झुँझलाहट और खीझ के स्वर में, उसने कहा, '··· आप तो अपनी ओर से सारा ही निर्णय किये बैठे हैं जैसे आप लोगों ने जो चाहा है वह होकर ही रहेगा···।'

उसकी बात को बीच में ही काटकर कमलकान्त ने कहा, 'नहीं···

नहीं, आप दरअसल में गलत समझीं है, यदि ऐसी बात होती तो यह सब मैं आपसे पूछता ही क्यों ?'

ज्योति ने हाँफते हुए कहा, 'ईश्वर के लिये मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिये······मैं···मैं···।'

कमलकान्त ने आवेश में उसकी कलाई पकड़ ली और कहा, 'आप डरती क्यों हैं ? मैं तो बात पूछ रहा हूँ ।'

'नहीं, मुझे छोड़ दीजिये···' ज्योति का स्वर काँप रहा था, वह पसीने में डूब गई थी। उसने तेजी से हाथ छुड़ाते हुए पुनः कहा, 'आपको अपरिचित लड़की से ऐसी बातें करते शर्म आनी चाहिये ··मुझे ऐसी बातें करने की आदत नहीं है···'—और वह तेजी से उठकर धड़धड़ाती हुई बाहर चली गई। चित्रलिखा सा कमलकान्त उसे देखता रहा, उठने की उसकी हिम्मत न हुई।

वहाँ से ज्योति सीधे बस स्टैण्ड पर आई और २१ नम्बर में बैठ कर पूसा रोड के लिये चल पड़ी। सारे रास्ते वह विचारों में खोई रही। कभी वह सोचती उसके इस व्यवहार के लिये उसे मौसी और अन्य क्या कहेंगे, यह खबर पिताजी को भी मिलेगी ही, वे क्या सोचेंगे ? किन्तु तभी उसकी दृढ़ता जैसे लौट आती। मन-ही-मन वह कहती, 'कोई भले ही कुछ भी कहे किन्तु वह अपने आप को प्रदर्शनी नहीं बनने देगी। वह कोई वेश्या तो नहीं है जो प्रत्येक व्यक्ति उसका हाथ पकड़ने का साहस करे और घर वाले इस कार्य में प्रोत्साहन दें, उसकी अपनी भी कुछ मान्यताएँ हैं, इच्छाएँ हैं। यदि उसे उसके ढंग से जीने की आज्ञा नहीं दी जाती तो यही सही किन्तु यह तो बहुत ही बुरी बात है···।' उस क्षण का चित्र उसकी मन की आँखों में घूम गया और तब की कल्पना कर घृणा से उसने मुँह बिचका लिया।

इसी सोच में पूसा रोड आ गया। वह बस से उतरी और सीधी मौसी के घर आ गई। विभा और प्रभा बाहर दालान में ही कुर्सियों पर बैठी बातें कर रही थीं, मौसीजी रसोई घर की व्यवस्था में लगी थीं।

ज्योति को अकेले ही आई देख विभा स्तम्भित-सी मुद्रा में उसकी ओर देखने लगी. प्रभा ने कह भी दिया, 'क्यों दीदी, अकेली ही आ रही हो ? और सब कहाँ हैं ?'

'मुझे पता नहीं है।' कहकर ज्योति कमरे में जाकर लेट गई। अपनी अवस्था से खिन्न होकर वह तकिये में मुंह छिपाकर सिसकियाँ लेने लगी। नर्मदा ने यह बातें रसोईघर में ही सुन ली थीं। उसने पहले तो बाहर आकर देखा, फिर यह देख कर कि वह बिना कुछ कहे सुने भीतर लेट गई है, उसे यह समझने में देर न लगी कि उसका कारण क्या है।

वह लड़कियों को अन्दर न आने का संकेत कर चुपचाप ज्योति के पलंग पर बैठ गई। उसका मुख दूसरी ओर को फेर कर उन्होंने कहा, 'बेटी क्या बात है ? मौसाजी को छोड़ कर अकेली ही चली आई ? क्यों कोई ऐसी-वैसी बात हो गई थी ?'

ज्योति ने सुबकियाँ लेते हुए कहा, 'मौसीजी ! मेरे हाल पर तरस खा कर मुझे अकेली छोड़ दीजिये ···मैं बहुत परेशान हूँ···।'

नर्मदा को उससे ऐसी बातें सुनने की कतई आशा न थी, उसे यह अपना अपमान सा लगा क्योंकि वह आज तक प्रत्येक पर शासन करने की आदी थी, बातें सुनने की नहीं। उसे ज्योति पर क्रोध आया लेकिन उसे बलात वह पी गई। उसने संयत स्वर में कहा, 'बेटी ! कोई बात हुई तो मुझे बतानी थी। तू तो आकर पड़ गई। देख नादान नहीं बनना चाहिए···।'

ज्योति उबल पड़ी, बोली, 'मौसीजी ! मुझे न छेड़िये. मैं ऐसे तमाशों की आदी नहीं हूँ। अगर किसी को बुलाना ही था तो मुझे पहले से बता देतीं। इस तरह एक अजनबी के साथ आपने मुझे भेज कर अच्छा नहीं किया।···मैं यह सब नहीं देख सकती···।'

उसके कहने के ढंग से नर्मदा के तन-बदन में आग लग गई। कल की लड़की अगर पढ़-लिख गई तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि वह मन-

माने ढंग से मुंह चलाए। वह क्रोध के स्वर में बोली, 'आखिर उमर भर तो घर में बैठी नहीं रहेगी, हमने सोचा था पढ़ी-लिखी है तो अपनी पसंद खुद देख ले। इसमें बुराई की क्या बात थी···मैंने तो आज तक किसी से ऐसी बातें नहीं सुनी हैं। अब साफ सुन ले, जीजा जी ने तेरे बारे में लिखा है कि ज्योति का व्याह होना ही चाहिए। उनकी बात का पालन हर हालत में होगा। इतना अच्छा लड़का हाथ से खो दिया है तो अब हम अपने मन की करेंगे।'

ज्योति ने मौसी की ओर देख कर कहा, 'मुझे नहीं पता था कि पिताजी के मन में ऐसी बात थी, जो उन्होंने मुझसे न कही··· अब आप गुस्सा क्यों करती हैं, जहाँ चाहें वहां ठिकाने लगा दें मुझे···।' आवेश में उसकी आँखें बरस पड़ीं।

नर्मदा को अपना तीर ठीक स्थान पर लगा देख मन-ही-मन प्रसन्नता हुई। उसने तुरत ही अपनी भावमुद्रा बदल कर ज्योति को सीने से लगाकर कहा, 'बेटी! तू बहन की कोख से जन्मी है तो क्या हुआ? मेरे लिए तो वैसी ही ये लड़कियां हैं वैसी ही तू। हमारा इसमें भला क्या स्वार्थ हो सकता है? बस तू सुखी रहे यही हमारा सुख है।'

ज्योति को यह बातें वैसी ही लगीं, जैसे कलापूर्ण गुलदानों पर सजे कागज के फूलों की बनावट, इसीलिए उन्हें उसने सुनकर भी भुला दिया। इससे जो आक्रोश उत्पन्न हुआ वह उसकी आँखों से रिसने लगा, इसमें ही उसने शान्ति अनुभव की।

उसी दिन से लड़के देखे जाने लगे और ज्योति एक प्रदर्शनी सी बन गई। यह क्रम नित्य की बात बन कर रह गया।

१२

पूर्णिमा ने एक अच्छा सा मुहूर्त देखकर एक दिन अजीत का विवाह कर दिया। विवाह के बारे में मंजु के पिता की यह इच्छा थी कि खूब तड़क-भड़क का प्रदर्शन किया जाए किन्तु अजीत ने इससे स्पष्ट इन्कार कर दिया। विवाह से पूर्व पूर्णिमा के ही सामने उसने देवबाबू से कहा भी था, '''इस बारे में हमें यथार्थवादी होना चाहिये। यह कैसे न्यायोचित हो सकता है कि एक ओर तो हम लोगों से सादगी की बात करें दूसरी ओर जब अपनी बात हो तो हम उन उपदेशों को भूल जाएँ'''आप भी समाज के एक सुधारवादी सज्जन हैं। मेरी भी इस बारे में सादगी की मान्यता है, तब हम ही यदि अपने सिद्धान्त से फिर जाएँ तो उचित-अनुचित में अन्तर क्या रह जायेगा ?'

पूर्णिमा ने इस बारे में देवबाबू की ही वकालत की थी क्योंकि वे अजीत का विवाह धूम-धाम से करना चाहती थीं किन्तु उसके तर्क के आगे सभी को अन्ततः हार मान लेनी पड़ी। विवाह में अजीत ने किसी प्रकार का दहेजादि भी न लिया। देवबाबू ने वही रुपये मंजु के नाम से बैंक में डाल दिये। अत्यन्त ही सादगी से वर-वधु पाँच बारातियों के साथ घर लौट आये। घर के बाहर पूर्णिमा और पड़ोस की स्त्रियों सहित दीप्ति ने नवदम्पति का स्वागत किया। पूर्णिमा की आँखों में आज वात्सल्य भाव मूर्त रूप में उतर आया था। बारी-बारी से वर-वधु ने उसके पैर छुए और उसने उनके माथे चूमे, आशीर्वाद दिया। यत्न के साथ मंजु की पीठ को हाथों का सहारा दिये वे ऊपर ले आई।

सारे दिन नववधु को देखने को आने वाली महिलाओं की भीड़ लगी रही, पूर्णिमा ने किसी के सत्कार में कोई कसर उठा न रखी। ' आज बहुत खुश थी। रात को उसने अजीत के माथे को चूमते हुए

स्नेहभरे स्वर में कहा, 'बेटा ! कभी-कभी सोचा करती थी कि भगवान ने लड़की दी थी तो एक लड़का भी देते । एक दिन लड़की को अपने ही हाथों से दूसरे के साथ विदाकर देना होगा, तब यदि किसी और को भी विदा कराकर इस घर में ला सकती तो वह दुःख घट जाता । सच ही कहा है, वह सबकी सुनता है । आज जैसा सोचा था वही देख भी लिया । अब जो आगे के लिये सोच बैठी हूं, वह और होता देख लूँ तो आराम से प्राण छूटें ।'

अजीत भावावेष से भर उठा। डबडबाई आंखों की पलकों में कंपन भर अजीत ने पूर्णिमा के पैर छू लिये । वह देर तक उसी प्रकार माँ के चरणों को अपने अश्रुजल से सिंचित करता रहा । पूर्णिमा को लगा जैसे आज वह किसी कल्पनालोक में पहुँच गई हो और उसके जीवन की बहुमूल्य निधि उसके पास हो । वह कुछ क्षणों तक भावविह्वल हो अजीत को पैरों से उठाना भी भूल गई और जब उसे इस बात का ध्यान आया तो पागलों की भाँति आवेग में उसने अजीत को ऊपर उठा लिया । वह देर तक उसकी पीठ का सहारा लिये अपने सजल नेत्रों का भार हलका करती रही । अजीत का गला भारी हो रहा था, फिर भी संयत होने की चेष्टा करते हुए पूर्णिमा को सम्बोधित कर उसने कहा, 'माँ ! और जो कुछ कहो सुन लूँगा, किन्तु प्राण जाने जैसी बात न कहा करें । आपकी जो इच्छाएँ हैं, वह पूरी होंगी । आप अपनी आँखों से वह सब देखेंगी । मुझे अपना बनाकर भी यदि आपको चिन्ता करने की आवश्यकता हुई तो मेरा जीना किस काम का ?'

उसकी बातों से पूर्णिमा के मन से जैसे सारा बोझ उतर गया । उसने कहा, 'बेटा ! जो कुछ मेरे पास है, वह तुम भाई-बहनों को सौंपकर मैं अन्तिम दिनों में काशी चली जाना चाहती हूँ । तुम्हें मैंने बताया था न कि मेरे भय्या आज कई वर्षों से वहीं रह रहे हैं । विवाह उन्होंने किया नहीं, घर की चिन्ता का झंझट उन्हें है नहीं । कुछ पूंजी पास थी उसी से एक छोटा सा मकान गंगा तट पर बनाकर

संन्यासी का जीवन बिता रहे है । उनकी यह बड़ी इच्छा थी कि दीप्ति के हाथ पीले करके मैं उन्ही के पास चली जाऊँ । बड़ी इच्छा होने पर भी दीप्ति के कारण ऐसा न कर सकी । अब तुम जानो बेटा ! दीप्ति तुम्हारी बहन है, माँ अशक्त है । तुम जैसा चाहो करो, मुझे छुट्टी दे दो ।'

मंजु, जो अब तक बाहर दीप्ति के साथ बैठी थी सास की बायीं ओर चटाई पर बैठ गई । माँ की बातें सुन वह भी करुणा से भर उठी किन्तु नयी-नयी होने के कारण सकोच मे कुछ कह न सकी ।

अजीत ने कहा, 'माँ, बाद में चाहे जैसी आज्ञा करोगी सभी कुछ हो जायेगा । अब कुछ साल तो तुम यही रहो । दीप्ति के हाथ पीले करके तुम कहोगी तो मैं भी मंजु के साथ ही काशी आ जाऊँगा । वहीं कुछ करके गुजारा हो जायेगा किन्तु तुमसे विमुख होकर रह सकूँ यह मेरे लिये असम्भव है ।'

बाते बहुत गम्भीरता धारण करती जा रही थीं अतः इस विषय को फिर किसी दिन के लिये छोड़ सभी भोजन करने उठ गये ।

रात को अजीत ने मंजु का घूँघट हटाते हुए कहा, 'मंजु ! आज से हम दोनों ही सर्वथा एक नये संसार में प्रविष्ट होने जा रहे हैं··· मैं माँ की प्रसन्नता देख आज बहुत प्रसन्न हूँ, माँ महान् हैं मंजु !' वह एक क्षण ठहर गया । उसने मंजु की ओर देखा, जो अपने पति के मुख की ओर भावपूर्ण नेत्रों से निहार रही थी । उसमें नववधु जैसा लजीलापन न था, न ही वह चपलता और चंचलता थी ।

अजीत ने पुनः कहा, 'मेरा स्वयं का जीवन एक तूफानी जीवन रहा है, उसी से मुझे प्यार भी है । निःचेष्ट पड़ा मनुष्य केवल सामान्य सुखों मे ही डूबकर रह जाता है और गतिशील मनुष्य बढ़ते-बढ़ते प्रगति के चरणों तक पहुँच जाता है···आज तुम मेरी भागीदार बनकर आई हो, मुझे आशा है हम दोनों कदम बढ़ाकर चलेंगे और जीवन के बढ़ते कदमों से प्यार करना सीखेंगे ।'

मंजु ने संकोच में गर्दन नीचे झुका ली और फिर अपनी वाणी में मिठास सी घोलते हुए कहा, 'मैं इस योग्य तो हूँ नहीं, जो आपकी बराबरी कर सकूँ, आपका अनुसरण ही करके आपका विश्वास प्राप्त कर सकी तो जीवन को सफल समझूँगी।'

'नहीं मंजु ऐसे नहीं' अजीत ने उसके माथे को अपने वक्ष से सटाते हुए कहा, 'हम दोनों साथी है! साथी भी ऐसे-वैसे नहीं। जीवन संग्राम के साथी। फिर अनुकरण जैसी बात जंचेगी नहीं। हम दोनों अपने में स्वतन्त्र है किन्तु लक्ष्य हमारा एक ही है।'

मंजु ने स्वय को ढीला छोड़ दिया। अजीत के बाहुओं में आबद्ध वह स्वयं को विस्मृत कर चुकी थी। रात्रि का अन्धकार बढ़ता जा रहा था। बाहर चौकीदार के बूटों की ध्वनि और जागते रहो की गूँज तेज होती जा रही थी। ऐसे में दो नये प्राणी एक दूसरे की आत्माओं के सम्बन्धों में अक्षुण्णता की डोर बाँध रहे थे।

× × ×

इन बातों को आज कई वर्ष बीत गये है। दीप्ति का विवाह भी हो गया है। वह सकुशल अपने पति के साथ मद्रास में है, जहाँ उसके पति का कोई व्यवसाय चलता है। अजीत समय के साथ ही बहुत कुछ बदल गया है। धन की उसके पास कोई कमी नहीं रह गई है। मंजु से एक लड़का भी है जो अब डेढ़ साल का है। दोनों अब भी खूब हिल-मिलकर रहते है, हाँ यह बात अवश्य है कि विवाह के बाद के कुछ वर्ष जितनी मिठास लिये बीते थे उनकी अब स्मृति ही शेष रह गई थी। मंजु सारे दिन घर पर टाँगें-पसारे या तो उपन्यास पढ़ती या बच्चे को खिलाती हुई पास-पड़ौस की औरतों से गप्पें हाँकती। अजीत पहले तो कालेज से सीधे घर आ जाता था किन्तु अब कुछ दिनों से वह शाम को देर से घर आने लगा था। वह प्रायः या तो महाबोधि सोसाइटी में दर्शन पर व्याख्यान सुनने में अपना समय काटता या फिर कालेज स्ट्रीट स्क्वायर की किसी बेंच पर पैर फैलाकर कोई पत्रिका पढ़ते समय बिता

देता। जब बत्तियां जल जाती और शाम हो जाती तब उसे घर जाने का स्मरण होता और वह तेजी से ट्राम की ओर दौड़ जाता।

पूर्णिमा जब तक घर पर थीं, तब तक सभी कुछ नियमित चलता था। उठना, बैठना, खाना, पीना सभी यथा समय हो जाता और सभी उनकी बातों का सम्मान करते। दीप्ति के विवाह के पश्चात् वे अपने भाई शरदेन्दु के पास काशीवास करने चली गई थीं। जाती बार अजीत फूट-फूट कर रोया था, उसने साथ चलने के लिये भी कहा था किन्तु उन्होंने शपथ दिलाकर अजीत को घर भेजते हुए कहा था, 'मैं तो बेटा अब अपना जीवन सफल करूँगी। तू अब घर वाला है, सोने सी बहू तेरे साथ है इन सबको छोड़कर मेरे साथ जायगा तो कर्तव्य विमुख हो जायगा। तेरी बहन है, उसे घर बुलाते रहना। देने-लेने की भी जो परम्परा है, उसका पालन अवश्य होना चाहिये···जा अब तू···।'

मंजु उस समय गर्भवती थी अतः स्टेशन पर वह न जा सकी थी, अजीत ने माँ के पैर छुए, हाथों की अंगुलियों को माथे से छुआया और फूट-फूट कर रो पड़ा था। माँ भी अपने हृदय के भावों को नियन्त्रित न कर पाई थी और तब दोनों एक-दूसरे से पृथक हो गये थे।

अजीत को तीसरे दिन माँ का पत्र मिल जाता है। उस पत्र में काशी की बातें विस्तार से लिखी होती हैं, घर पर ठीक से रहने का आदेश होता है। मुन्ने का ध्यान रखने और मंजु की सेहत के लिये फलों का रस उसे खूब पिलाने की भी आज्ञा होती है। अजीत वैसे इन दिनों कुछ लापरवाह सा होता जा रहा है, घर पर उसका मन ठीक से नहीं लगता किन्तु जब माँ का पत्र आ जाता है तो कुछ समय के लिये उसमें कर्तव्यों के प्रति जागरूकता आ जाती है। वह घर के कामों में भी रुचि लेता है, मंजु से भी हँस-बोल लेता है किन्तु फिर उसको मानसिक निद्रा अपने पाश में लपेट लेती है और क्रमशः उसमें वही लापरवाही आ जाती है।

मंजु पढ़ी-लिखी तो अवश्य है किन्तु भावनाओं के बहाव में उसे अब

वह रुचि न रही जो विवाह के पूर्व थी। पहले वह अजीत की बातों को, उसके सुझावों को श्रद्धा से ग्रहण करती और उससे बातें करते हुए उसे ऐसा अनुभव होता मानो वह नशे में है किन्तु अब अजीत की उस प्रकार की बातें उसे अजीब-सी लगतीं। कभी-कभी जब अजीत उसके कन्धे पर हाथ रख देता या कोई ठिठोली कर बैठता तो वह बड़ी-बूढ़ी औरतों के समान झुँझलाहट के स्वर में कह उठती, 'छोड़ो भी ! यह कैसी बचकानी बातें करते हो।'

अजीत को इस सबसे दुःख होता किन्तु वह कुछ कह न पाता। मंजु का मन उससे फिर गया था, ऐसी बात न थी, किन्तु वह अब अपनी शारीरिक भूख मिटाने के सिवाय अन्य बातों पर ध्यान कम ही देती थी।

इधर कुछ दिनों से अजीत को देर से घर आते देख मन-ही-मन वह कुढ़ती थी। प्रायः खाना परोसते समय या और किसी समय अवसर पाकर वह उस पर व्यंग्य भी कसे बिना न रहती। उस दिन अजीत ने तरकारी में मसालों के कम होने की शिकायत की थी कि मंजु बोल उठी थी, 'जब बाहर का चस्का लग जाता है तो फिर घर की चीज फीकी ही लगती है।'

अजीत क्रोध को पी जाने का आदी था किन्तु उस दिन उसने अनुभव किया कि यह तो अति है। वह त्यौरियाँ चढ़ाकर बोला, 'तुम्हें शर्म तो नहीं आती ऐसा कहते हुए ? घर से बाहर कभी एक प्याली चाय तक तो पी नहीं है, फिर भी न जाने क्या समझती हो।'

मंजु ने भी उसी प्रकार क्रोध में कह दिया—'शर्म तो तुम्हें आनी चाहिये ; जो तुम्हें घर की कोई चिन्ता ही नहीं रही। बाबा ने भी उस घड़ी यह न सोचा कि अपना देशभाई ही अपना होता है दूसरे प्रान्त का नहीं।'

अजीत को यह आशा न थी कि बात यहाँ तक जा पहुँचेगी। उसकी आँखों में देश के 'जहरवाद' ने खून उतारकर रख दिया। उसने क्रोध में

थाली उठाई और जमीन पर पटक दी। सारा खाना बिखर गया। शोर सुन कर पप्पी हड़बड़ा कर जागा, अजीत ने उसकी कोई चिन्ता न की वह क्रोध में बड़बड़ाने लगा, 'मुझे पता नहीं था कि तुम्हारे विचार इतने निम्न स्तर के होंगे। एक माँ भी थीं, जो आज तक मेरे पूर्व जीवन के बारे में बात करना नहीं चाहतीं थीं, जिनकी महान् प्रेरणा से आज मैं केवल भारतवर्ष को जानता हूँ। बंगाल, उत्तरप्रदेश और पंजाब की पृथक कल्पना करने में भी संकोच होता है और एक तुम हो···।' वह क्रोध से ओठों को चबाने लगा।

मौका पाकर मंजू ने कहा, 'माँ पागल थीं, नहीं तो ऐसा कभी न करतीं, और फिर मैं तो पुरुषों के बारे में कहूँगी। तुम क्या किसी एक के होकर रह सकते हो? औरत तो तुम्हारे लिए चाट के समान है, उससे जब चाहा स्वाद बदल लिया। यह प्रेम-प्यार की बातें तो स्त्रियों को वश में करने के इंजेक्शन है···।'

पप्पी रो रहा था अतः वह उठकर उसे चुप कराने में लग गई। अजीत उठा और चुपके से एक ओर को चल दिया। बागबाजार से वह सीधा ट्राम में बैठ कर चौरंगी आया, अकारण ही इच्छा न होने पर भी वह मैट्रो सिनेमा के निकट टहलता रहा। वह आज सोच रहा था कि भाग्य ने उसे एक घुटनभरी जिन्दगी के चौराहे पर खड़ा कर दिया है, जहाँ अविश्वास है, घृणा और जातिगत, प्रान्तगत विद्वेषभावना है।

वह चौरंगी से लिण्डसे स्ट्रीट की ओर को मुड़कर राह चलते लोगों को देखता हुआ आगे बढ़ रहा था, सहसा उसके मन में एक विचार आया कि उसकी पत्नी ने ही जब उस पर अविश्वास व्यक्त किया है तब क्यों न एक बार वह विश्वास की चादर को उतार फेंके, क्यों न वह इन चमचमाती रंगीनियों में डूबे? उसने निश्चय किया कि वह अवश्य ऐसा करेगा।

सामने ही क्वालिटी बॉर था। अजीत निर्भय हो कर उसमें चला

गया और एक कैबिन में बैठ गया। वह बार तब अपने मस्तेपन के लिए इस क्षेत्र में कम प्रसिद्धि प्राप्त नहीं था। उसमें एक हाल था, जहाँ उसके जैसे दर्जनों व्यक्ति मन की आग बुझा रहे होते। वहाँ कई लड़कियाँ बैठी होतीं, जो पहनावे में अच्छे घर की जान पड़तीं किन्तु यह शालीनता ही उनके व्यापार को सुचारु रूप से चलाने में सहायक होती। लोग आते कैबिन में बैठकर किसी लड़की को पास बुलाकर दो पैग मंगवाते और फिर उसी में बेदम हो, जामे से बाहर हो जाते। वहाँ हँसी गूँजती, किलकारी गूँजती और गूँजती एक बनावट—जहाँ इन्सान नंगा हो जाने पर भी अपनी वास्तविकता बनाये रखना चाहता है।

बैरा आकर अजीत के पास खड़ा हुआ तो अजीत ने कह दिया, 'कोई पैग ले आओ ?'

'कौन सा साहब।'

'कोई सा भाई।' अजीत ने कहा, 'कोई भी हो वही ले आओ।'

बैरे ने जिनका एक पैग लाकर दे दिया। अजीत को यह स्वाद अजीब सा लगा—जिन्दगी में पहली बार उसे अनुभव हुआ जैसे कोई चीज उसके गले को चीरती हुई आगे बढ़ गई है। यही क्रम तीन बार चला और धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि जैसे वह आकाश की अनन्त ऊँचाइयों पर उड़ा जा रहा हो। उसका माथा कुर्सी के ऊपर लुढ़का हुआ था और वह अपने आपे में न था।

आदमी उठता है, गिरता है फिर गिर कर सम्हलता है, यह बात सत्य हो या नहीं किन्तु यह तो प्रत्यक्ष सामने था कि जीवन की पेचीदगियों के उलझाव में एक अच्छा राही आज बुरी तरह उलझ कर रह गया था। उसकी धैर्यशीलता, उसके सिद्धान्त और उसकी मान्यताएँ मानो आज भूलुँठित हुई पड़ी थीं।

१३

दिल्ली से ज्योति ने अपने पिता को भी पत्र लिखा था और तोषी को भी। चरणदास को जो पत्र ज्योति ने लिखा था उसमें उसने अपनी मानसिक स्थिति का वर्णन तो किया ही था, यह भी उल्लेख किया था कि किस वातावरण में वह रह रही है और जिस प्रकार उसे प्रदर्शनी की वस्तु बनाया जा रहा है यह उसे कतई सह्य नहीं है। उसने अपनी अब तक की स्वतंत्रता की तुलना यहाँ के संकीर्ण वातावरण से की थी और शीघ्र ही वापस लौटने की इच्छा प्रकट की थी। किन्तु उत्तर में चरणदास का जो पत्र उसे मिला था उसे पढ़कर वह हताश हो गई। उसे लगा जैसे उसके पिता के वे आँसू और वे सहानुभूति की बातें सभी कुछ कृत्रिमता थी। उन्होंने उसे स्पष्ट लिख दिया था कि अब वह युवावस्था को पार कर गई है अतः उसका अधिक दिनों तक स्वतंत्र रहना हानिप्रद है। उन्होंने घुमावदार बातों के द्वारा उसे यह भी स्पष्ट कर दिया था कि उसके मौसा और मौसी जो कुछ चाहते हैं वह अनुचित नहीं है।

ज्योति ने इन सभी बातों की संतोष से चर्चा करते हुए लिखा था, "···अब रोज-रोज नये लड़के मुझे देखने आते हैं, उनमें से प्रायः सभी मुझे इस दृष्टि से परखते हैं जैसे मैं कोई बकरी होऊँ और उसका माँस आँका जा रहा हो कि कितना बैठेगा। आज मुझे लगने लगा है कि मैं सर्वथा बेसहारा हूँ, कोई मेरी भावनाओं को समझने वाला नहीं है। मैं पढ़ी-लिखी हूँ, रूढ़ियों से भी मुझे घृणा है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मुझे आये दिन नये-नये लड़कों के साथ सिनेमा जाने को कहा जाये, मुझे हाव-भाव दिखा कर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है···समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? इन सब

बातों से मुझमें एक नई चीज का जन्म हुआ है और वह है घृणा। किन्तु यह घृणा अब धीरे-धीरे मुझे कुढ़न की ओर ले जा रही है। मेरी यह आदत बन गई है कि जो भी मुझे, भोग्य दृष्टि से आँकने आता है उससे मैं ऐसा व्यवहार करती हूँ, जिससे वह जले, कुढ़े और यह समझे कि या तो यह लड़की पागल है या यह निम्नचरित्र की है। यह स्थिति ऐसी है जो अधिक दिनों तक नहीं चलेगी अतः सोचती हूँ आत्महत्या कर लूँ। मेरी राय से यही एक समाधान उचित होगा। मैंने तुम्हें अपने दुःख इसलिए नहीं लिखे हैं कि इनसे तुम स्वयं दुःखी होओ, क्योंकि तुम्हारे दुःखी होने से भी बात में कोई अन्तर पड़ेगा ऐसा मैं नही मानती। यह तो मेरे अन्तर की एक आग है, जो बाहर निकल कर शायद कुछ समय के लिए अन्तरताप को कम कर दे।···इसके बाद और बहुत-सी बातें लिखकर उसने तोषी को पत्र भेज दिया था। तोषी ने उसे अपनी सौगंध देकर लिखा था, '···अगर तुमने अपनी अवहेलना की और आत्महत्या जैसी कायरतापूर्ण बातों का सहारा लिया तो मैं समझूँगी कि तुमने अपनी छोटी बहन के विश्वास को नीलाम किया है···जीवन में हार मानने से काम न चलेगा। हाँ, यदि तुम इस वातावरण से घबरा उठी हो तो तुरन्त ही मेरे पास चली आओ। इसके लिए 'उन्होंने' भी हृदय से सलाह दी है···यहाँ किसी का साहस न होगा कि वह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हें प्रयुक्त करे···तुम आओ तो सही···'

तोषी के पत्र को पढ़कर ज्योति खूब रोई थी और उसे लगा था जैसे वह अकेली नहीं है अभी, उसके लिए सहानुभूति रखने वाले भी हैं।

ज्योति आज सारी रात्रि जागती रही। विचारों की करवट ने उसे नींद न आने दी। आज उसने पिछली सारी स्मृतियों को एक-एक करके दोहरा डाला। वह ग्राम, पं० मुलख राज का विद्या मन्दिर, उसके पिता का उनके साथ किया गया व्यवहार, अजीत का गाँव आना पिता की मृत्यु के बाद ज्योति की भेंट को ठुकरा कर कहीं चले जाना···फिर

देवेन्द्र से उसकी और तोषी वाली घटना और फिर आज की स्थिति ! मन ही मन उसने सोचा; आने वाला कभी अवश्य आयेगा, इसी आशा में वह अपने जीवन को सुखा डाले, शायद यह भूल होगी। उसका आना यदि न हुआ तब ? उसमें ऐसी कौन-सी बात थी ! कोई भी तो नहीं, फिर भी वह एक ऐसी आशा के सहारे जो धुन्ध के आवरण में छिपी है अपने वर्तमान को क्यों नष्ट करे ?

उसे वह बात याद आई जब अजीत ने उसकी दी हुई चीज गर्व-पूर्वक ठुकरा दी थी, उसकी सौजन्यता और आत्मीयता का कितना गहरा अपमान था वह ! इसके बाद भी वह आज तक उसे अपने हृदय के सर्वो-त्तम स्थान पर बिठाये है। इस सब के बाद भी उसके अन्तर में एक ऐसी भावना पनपती रही जो अपने उत्सर्ग के द्वारा अपनी अवहेलना करने वाले को नत करने सदृश थी। उसने सोचा जीवन के सभी सुख उसके लिए आज नीरस हो गये हैं, फिर माँ के और पिता के समक्ष उसने एक आदर्श प्रस्तुत किया, तोषी और देवेन्द्र के समक्ष वह एक सर्व-त्यागिनी के रूप में आई। यह सब क्या यों ही रह जायेगा ?

मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर भी और सामान्य दृष्टिकोण से भी मानव मन में एक ऐसी धारणा होती है जो प्रायः अपने आदर्शों की पूर्ति में महानता के दर्शन करती है। जिसने उसे गलत समझा है, जिसने उसकी अवेहलना की है उससे स्वप्रपीड़न द्वारा एक दिन अपनी भूलों का प्रायश्चित्त कराने में उसका अन्तरमन एक आत्मीय शान्ति का अनुभव करता है। त्याग और वैराग्य इसी कोटि की उपज हैं। यही भावना यदि ज्योति के मन में घर कर गई थी तो वर्तमान में छिपे भविष्य की तरंगों में वह अपने अतीत को कैसे भुला देती, जो स्वयं में एक निस्सीम वेदना की स्मृति लिये होने पर भी उसके जीवन का अव-लम्बन बन बैठा था।

दूसरी ओर यह तैयारी थी कि उसे शीघ्र ही कहीं बाँध दिया जाए, इसमें उसकी इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही न था। इसके लिए उसे

कृष्णलाल जी के लम्बे-चौड़े भाषण सुनने होते, जो अदालती बयानों की तरह जीवन और यथार्थ से दूर होते, उसमें तर्क होते, कृत्रिम भावनात्मक पुट होती और होते उसके लिये कोरे उपदेश ! उसकी मौसी के भाषणों में पुरानी संस्कृति और माँ-बाप के आदर्शों की पूर्ति के लिये सन्तान के कर्तव्य की मिठास होती और फिर माँ-बाप की आज्ञा के आगे अपनी समस्त मान्यताओं को बलि चढ़ा देने का उपदेश होता ।

एक दिन वह ऊब गई तो चिढ़कर उसने कह दिया, 'मौसी जी ! इन बातों में कुछ धरा नहीं है । पुरानी बातों का पालन और नई बातों की मान्यता यह सब आप बुजुर्गों की इच्छा की बातें हैं । जहाँ आपका लाभ नये जमाने की मान्यताओं में होता दिखाई दिया वहाँ 'मार्डर्न' बन गये और जहाँ पुरानी मान्यताओं के कंगूरे से स्वार्थ ने आवाज दी वहाँ रूढ़िवादी बने रहे ।'

नर्मदा ने आँखें तरेरकर कहा, 'मैं तो अब भी लड़कियों के पढ़ाने लिखाने के खिलाफ हूँ । तू मुझे यह सब कह नहीं सकती । भला जो बातें हमारे जमाने में थीं वे आज कहाँ हैं ?'

ज्योति ने कहा, 'उन बातों को तोड़ने वाला क्या कोई दूसरा है ? वह भी तो आप ही लोग हैं । मुझे कहना तो नहीं चाहिये पर कह देने में कोई हरज नहीं है कि मुझे ही देख लीजिये । मेरे पिता जी का जो जमाना था, वह सतयुगी जमाना कहलाता था । तब सभी काम वचनों से होते थे । वही लोग उस जमाने के रक्षक थे और जब तोड़ने की बात आई तो उन्होंने ही उसे तोड़ा भी ।'

जिस बात को लक्ष्य कर ज्योति ने यह बात कही थी, वह भली भाँति कृष्णलाल भी समझ गये और नर्मदा भी । वे अजीत के प्रकरण से परिचित थे । इस बात का प्रभाव ज्योति के मन से दूर करने की दृष्टि से कृष्णलाल ने कहा, 'तुम जिस बात को सही समझती हो, दूसरे भी उसे ठीक मानें यह भूल है । और फिर तुम्हारे पिता जी ने यदि

प्रारम्भ में कोई भूल की तो उसे सुधारने का भी उन्हें अधिकार नहीं है क्या ?'

सत्यता को तर्कों से उड़ाने में सिद्धहस्त अपने मौसा जी का यह तर्क उसे जंचा नहीं, छूटते ही उसने कहा, 'मौसा जी ! आप तो कानून के ज्ञाता हैं न ! अच्छा बताइये एक अभियुक्त वकील को अपना रक्षक समझकर नियुक्त करता है, वह एक प्रकार से सभी कुछ वकील पर ही छोड़ देता है किन्तु जब वह यह देखता है कि वकील साहब की पैरवी से उसे सजा होनी अवश्यम्भावी है क्या तब भी वह चुप रहे ? आप जिसे अपने स्वार्थों की तराजू से भूल सुधारना कहते हैं वहाँ यदि मैं उसे भूल सुधारना न समझूँ, तब भी आप मुझे बाध्य करेंगे ?'

वकील साहब उसके तर्कों से छटपटाहट अनुभव कर रहे थे और नर्मदा उन बातों का कुछ अर्थ निकाल कर उसके प्रति मन में कटु धारणाओं को जन्म दे रही थी ।

वह आगे कहती गई, 'यही स्थिति प्रायः आप बुजुर्गों की और हम छोटों की है । आप हमारी भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते, यह जानकर भी हमें कर्तव्य और प्रतिष्ठा के नाम पर स्वेच्छा से नहीं जीने दिया जाता है ।'

वह निरन्तर आवेश में बोली थी, कहीं उसका आक्रोष बढ़कर सीमातिक्रमण न कर जाए, यह समझकर कृष्णलाल ने बात की धारा बदल दी। ज्योति की पीठ पर थपकी देते हुए उन्होंने बनावटी हँसी के स्वर में कहा, '···अच्छी तार्किक हो गई है···ठीक है अब तुझे भी वकालत की लाइन में ले लेने के लिये मैं भाई साहब को कल ही लिखता हूँ।'

ज्योति ने हाथ जोड़ दिये, 'और सभी कुछ कर लूँगी मौसी जी, पर यह 'वनस्पति' की डिग्री तो मरकर भी लेना मुझे मंजूर नहीं है ।'

'अच्छा ! इसका मतलब यह है कि तुम्हारी राय में इस पेशे से बढ़कर ठगी और कहीं नहीं है क्यों ?' वकील साहब ने हँसते हुए कहा, इस हँसी में उनके सोने की टोप चढ़े नकली दाँत चमक उठे ।

ज्योति ने इस बार गम्भीरता को तोड़कर हल्की-सी मुस्कान बिखेरते हुए उत्तर दिया, 'धृष्टता के लिये पहले ही क्षमा माँगे लेती हूँ मौसा जी ! यह तो मैं नहीं कहती कि इस काम में ठगी ही है। वह भी हो सकती है, किन्तु न्याय का, न्याय के ही विधि-विधानों से शानदार 'पोस्टमार्टन' करने का यह एक ऐसा तरीका है जो न्याय के ही मन्दिर में धड़ल्ले से होता है। तारीफ यह है कि यह अथाह धन भी देता है और यश भी किन्तु यह सभी चूँकि वैध ढंग से होता है अतः कोई भी इस पर अंगुली नहीं उठा सकता।'

बात के अन्त में कृष्णलाल ठठाकर हँस पड़े, मानो वे अपनी भीषण हँसी के बोझ से सत्य की आवाज को दबा देना चाहते है।

अगले दिन प्रातः ही वकील साहब को एक तार मिला, 'चरणदास जी का स्वर्गवास हो गया है—ज्योति और नर्मदा को लेकर जल्दी आओ 'सत्यवती।'

तार को पढ़कर न जाने क्यों, ज्योति अब तक की सभी बातें भूल गई और निर्झर की भाँति उसकी आँखें बरस पड़ीं।

१४

'जिन्दगी एक हसीन किन्तु नाजुक सपना है, जो धीरे-धीरे मिटता जा रहा है।'
—नैपोलियन

वास्तव में जीवन एक सुहाना सपना है, इससे अधिक कुछ और नहीं। जैसे-जैसे जीवन की सुबह नजदीक आती जाती है, वैसे-ही-वैसे वे सपने भी धुंधले हो जाते हैं और कभी वह समय भी आ जाता है, जब नये मनमोहक सपनों की धुंधली याद भी स्मृति में पुंछ जाती हैं।

जीवन में सर्वप्रथम उस त्याज्य, घृणित और समाज में बहिष्कृत पेय का उपयोग करने के बाद अजीत को उसमें आनन्द-सा आने लगा। उस से उसके नये क्रन्दन, नये उत्पीड़न और नए दर्द बहकने लगे और वे पुरानी स्मृतियाँ सुन्दरी प्रेतात्मा की श्वेत, आकर्षक प्रतिच्छाया के समान मन में उठने लगीं। बचपन के दिन, अभावों का जीवन और दूर बसे सप्तसिंधु के देश में बिकी हुई माँ-बाप की वह ठौर उसे याद आने लगी। ज्योति की धुधली-सी तस्वीर और उसके साथ बँधे उस आकर्षण की स्मृति करवटें लेने लगी और तब वहाँ से यहाँ तक का परिवर्तन उपन्यास के अध्यायों के समान क्रमवार उसके अन्तर के चित्रपट पर नाच गया।

यद्यपि वह आज सभी प्रकार से सुखी था। घर-गृहस्थी, धन, ऐश्वर्य सभी कुछ उसके पास थे फिर भी वह इन सबसे सन्तुष्ट था, ऐसी बात नहीं। देश से इतनी दूर आकर वह अपने पूर्व जीवन से कहीं अच्छा था किन्तु मानसिक शान्ति से बहुत दूर! पूर्णिमा जब तक रही तब तक उसे यह सोचने का भी अवसर न मिला कि वह क्या था और आज उसके स्वभाव से यह सोचने का उसे अनायास ही अवसर मिल जाता है। वह जानता है कि मंजु उस पर सन्देह करती है, वह समझती है कि संतान होने के बाद से पति का आकर्षण उस पर नहीं रहा। वे अब दूसरे

स्त्रियों से मेल-मिलाप रखने लगी है। इसी कारण उसका सारा ध्यान अब अपनी संतान की ओर केन्द्रित हो गया था। अजीत के प्रति पत्नी के जो कर्त्तव्य होने चाहिए उन्हें येन-केन प्रकार से वह पूरा कर लेती है किन्तु वह उत्सुकता उसमें न रही जो पहले थी। यही तक बात होती तो इसे मानसिक असंतुलन की संज्ञा देकर ही सन्तोष कर लिया जाता किन्तु जब प्रान्तीयता और 'देशवासी' जैसी संकुचित धारणाएँ मन में घर कर गईं तो वह उस जीवन से घृणा कर उठा। जहाँ वह उस समाज में घुल-मिल गया, जहाँ उसने प्रान्तीयता के अस्तित्व को एकता और प्रेम के सूत्र में आबद्ध कर एक पृथक अस्तित्व में विलीन कर दिया वहाँ आज, इतने वर्षों के बाद उसकी पत्नी के मन में ऐसे विचार उठे—यह उसके लिए असह्य था। वह यदि मनन-चिन्तन में अपना समय व्यतीत करता था तो मंजु उस पर अविश्वास करके यह कैसे धारणा बना लेती थी कि वह समय कहीं और काटता है? यह विश्वास और अविश्वास की ठोकर थी। यह एक ऐसी ठोकर थी, जिसे उसे यथार्थ तक लाना था और किसी लिए नहीं केवल प्रतिकार और जिद की भावना की तुष्टि के लिए। जिसके हाथों उसने अपना जीवन समर्पित कर दिया, जिसके भविष्य की जमीन पर उसने अपने वर्तमान का भवन खड़ा किया, आज वही उसके विश्वास को ठोकर लगाकर उसके सुनहले स्वप्नों की प्राचीर को छिन्न-विछिन्न कर देगी? इससे अच्छा होगा वह स्वयं अपने भवन को नष्ट कर डाले।

·········और तब उसे शराब का आश्रय लेना पड़ा, क्योंकि एक भगोड़ा आदमी सदा भागने के लिये अच्छी ओट चाहता है, जिसके सहारे उसके हीन इरादे पल कर बड़े हों।

—उस दिन क्वालिटी में वह सर्वप्रथम अपने अस्तित्व को खो बैठा था किन्तु नशे में भी उसे यह बात याद आये बिना न रह सकी कि नशे के बहाने दर्दों को भुलाने का बहाना केवलमात्र बहाना ही है, नहीं तो नशे की तरंगों में वे भली सखियाँ भी बिसर जाती हैं, जो यथार्थ में मट-

मैली पड़ गई होती है ।

रात्रि के बारह बजे जब बॉर बन्द करने का समय आया तो उसे सर्वथा अचेत देखकर वेटरों ने सड़क के किनारे उठाकर रख दिया। काफी रात तक वह एक अनोखी दुनियाँ में विचरण करता रहा और रात के तीन बजे जब उसकी खुमारी ने पलकें खोलीं तो वह उठ बैठा। उसे याद नहीं आया कि वह कहाँ जायगा। फिर भी किसी प्रकार लड़खड़ाते कदमों से वह चौरंगी के टैक्सी-स्टैंड से एक टैक्सी पर सवार हो कर घर पहुँच गया। जिन सीढ़ियों पर वह आज तक सरपट दौड़ा था वही उसे इतनी ऊँची लगी कि सम्हल-सम्हल कर वह ऊपर तक पहुँच पाया।

दस्तक देते ही दरवाजा खुल गया। पत्नी की तेज निगाहें क्षण भर में ही सब कुछ समझ गईं। वह लड़खड़ा रहा था अतः अनिच्छा से वह उसे सहारा देकर चारपाई पर ले गई। बैठते ही उसने पैर फैला दिये और लेट गया। उसे इस क्षण अतीव शान्ति का अनुभव हुआ क्यों कि वह किसी प्रकार अपने घर तक पहुँच गया था। देखते-ही-देखते वह सो गया। पत्नी ने उससे कोई प्रश्न न किया केवल उसे एक चादर उढ़ा दी।

सवेरे देर तक वह सोता रहा, जब नौ बजने को आये तो मंजु ने कालेज की चर्चा करते हुए उसे जगा दिया। हड़बड़ा कर वह उठ बैठा और आधा घंटे में ही तैयार होकर नित्य की भाँति नाश्ते की मेज पर बैठ गया। बच्चा शायद रात को देर से सोया होगा, इसीलिये अब तक नींद में अचेत था।

मंजु ने आलू के पराठे और चाय मेज पर रखकर साधारण स्वर में कहा, 'तुम अब शराब भी पीने लगे हो न ?'

उसे रात की बातें एक स्वप्न सी लग रही थीं, इच्छा न होती थी कि उन पर विश्वास करे, फिर भी वह सभी कुछ तो सत्य था। उसने कह दिया, 'हाँ !'

'क्यों ?'

'इसलिए कि वह एक ऐसी दोस्त है, जो दुःखों को भुला देती है" अजीत ने कहा।

'क्या दुःख हैं तुम्हारे सुनूं तो !'

'तुम हो उनका कारण' उसने क्रोध में कहा, 'तुमने मेरी सारी आशाएं, सारे स्वप्न धूल में मिला दिये हैं।'

'मैं मर जाऊँ तो तुम यह सब बुराइयाँ छोड़ दोगे ?' मंजु का गला रुँध गया था। वह सिर नीचे किये ही बातें करती जा रही थी।

अजीत ने क्रोध में कह दिया, 'हाँ ! तुम मर जाओ तो ·····।'

वह आँसुओं को पोंछती हुई उठ गई और दूसरे कमरे में जाते हुए उसने कहा, 'अच्छा ! ऐसा ही होगा।'

अजीत का मस्तिष्क भिन्ना गया था। वह नाश्ते को वैसे ही पटक कर उठ खड़ा हुआ। उसने कोई किताब उठाई और ज्यों-ही दरवाजा खोलने को वह उधर हुआ मंजु उसके आगे खड़ी हो गई। जोर-जोर से रोते हुए उसने कहा, 'नहीं, ऐसे नहीं जाने दूंगी। यह खाकर जाओ !'

अजीत की आँखें लाल हो गईं। दाँत पीसकर उसने कहा, 'इतने दिन खूब खा लिया। अब जी भर चुका है। छोड़ो मुझे जाने दो।'

वह पूरी शक्ति से दरवाजे पर पीठ सटाये खड़ी रही। सिसकियों के बीच उसने कहा, 'अब अंतिम बार और खा लो। फिर कष्ट न दूंगी। मेरी बात मान लो···।' वह अजीत के पैरों पर झुक गई और अपनी रिसती आँखों की गर्म-गर्म बूंदों से उन्हें तर करती रही।

अजीत को एक झटका सा लगा, वह दूर किसी भूल-भुलैया से जैसे लौट आया हो। उसने स्वयं झुककर मंजु की पीठ को झिझोड़ते हुए कहा, 'उठो यह क्या पागलपन कर रही हो !'

'बस आखिरी बार···' मंजु ने उसी तरह कहा।

अजीत ने उसे उठा लिया, उसकी आँखों को पोंछते हुए कहा, 'तुम्हें यह क्या हो गया है ?'

'मैं आज चली जाऊँगी न' विक्षिप्तों की भाँति वह बोली ।

'कहाँ जाओगी ?'

उसने उँगली से ऊपर की ओर संकेत करते हुए कहा, 'वहाँ !' और फिर वह उसी स्वर मे कहती गई 'पप्पी ! का ध्यान रखना···मुझे तो भूल जाओगे ही पर इसे न भूल जाना !'

अजीत का अन्तर रो पड़ा, जिद और द्वेष की दीवार हिल गई । उसने कसकर मंजु को छाती से सटा लिया और काँपती वाणी में कहा, 'अब बहुत हो चुका ! ऐसा करके क्या तुम सोचती हो मैं जी लूँगा ?'

'तुम्ही तो कहते थे ?'

'इसीलिये तुम मरने चली थीं ?'

'हाँ इसीलिये' मंजु ने कहा, 'मैं तुम्हारा विश्वास मरकर भी पाना चाहती हूँ ।'

'देखो मंजु' अजीत ने उसके बिखरे बालों पर स्नेह से उँगलियाँ चलाते हुए कहा, 'मैंने आज तक तुम्हारे विश्वास को कायम रखा है···· मुझे लगा कि तुम्हारी ही ओर से वह टूट रहा है···तुम नही जानती कि यह मेरे लिये कितनी बड़ी चोट थी । यद्यपि यह बुरा था फिर भी उस चोट पर मुझे शराब का फाहा रखना पड़ा । मैं आज तक तुम्हारे प्रति निष्ठावान रहा, फिर भी तुमने देश और प्रान्त की बात की···।'

मंजु ने उसके ओठों पर उँगली रखते हुए धीरे से कहा, 'तुम मेरे हो न ! यही जानकर मैं आगे कुछ सुनना नहीं चाहती । मुझे यही भ्रम हो गया था कि तुम मुझसे दूर होते जा रहे हो । इसी से संकीर्ण बातें मन-मस्तिष्क पर छा गई थीं । अब बताओ मेरी सजा क्या है ?'

करुणा का स्थान स्निग्ध प्यार ने ले लिया, अजीत के ओठों पर एक कोमल मुस्कान खेल गई । उसने कहा, 'तुम्हारी सजा ? हाँ सजा वास्तव में कड़ी होनी चाहिये ताकि तुम भविष्य में ऐसा अपराध करने का साहस न कर सको ।'

'क्या सजा देते हो ?' उसने भोले भाव से कहा ।

अजीत ने उसकी लटों को पीछे किया, जो सावन की बदलियों के समान उसके माथे पर अटक गई थीं फिर उसके माथे पर एक मधुर प्यार का चिन्ह अंकित करते हुए कहा, 'अब तुम्हारा दिमाग ठीक हो जाएगा। हाँ, अगर भविष्य में तुमने ऐसा अपराध किया तो और भी कड़ी सजा मिलेगी !'

मंजु ने पलकें नीची करके कहा, 'ऐसी हजार सजाएँ तुम अभी दे डालो तो अपने को धन्य समझूँगी।'

अजीत हँस दिया, 'सजा तो न्यायाधीश के देने पर ही मिलती है। अपराधी के कहने पर दी जाने लगे तो उसका महत्व ही क्या रहा !'

'यह प्रोफेसरी छाँटने लगे न।' मंजु के दाँत मोतियों की लड़ी के समान चमक गये।

ठठाकर अजीत हँस पड़ा। आज एक युग के बाद जैसे इस घर में सवेरे की सुनहली किरणें फूट रही थीं। यह जीवन का सवेरा था, मुस्कानों का सवेरा था···और था निराशाओं की अन्धकारपूर्ण रात्रि के बाद आने वाली आशाओं के स्वप्न-सत्य का सवेरा।

१५

मणिकर्णिका घाट के पास ही एक पुराने ढंग का मकान है, जो सीढ़ियों की बायीं ओर न जाने कब से पुनीत पावनी गंगा की जलधारा की ओर मुख किये एक मौन-साधक के समान खड़ा है। उसमें दो खंड हैं। ऊपर के खंड में तीन छोटे कमरे और एक रसोई-घर है। नीचे के खंड में एक संत निवास करते हैं। नीचे के तीनों कमरों में उनके क्रमशः निवास और पूजा-पाठ की व्यवस्था है। इस सबका मकान-मालिक उनसे कोई किराया नहीं लेते।

कहते हैं आज से चौदह वर्ष पूर्व एक बंगाली युवक ने यह मकान वहीं के एक पण्डे से खरीदा था, तब से अब तक यह मकान उन्हीं के पास है। जब उन्होंने यह मकान लिया था, तब वे पैंतीस वर्ष के थे, आज वे लगभग पचास वर्ष के हैं। इतने दिनों में उन्हें किसी ने भी सामान्य साँसारिकताओं की ओर झुकते नहीं देखा। वे जब से यहाँ हैं, तभी से एक प्रकार से वे साँसारिक जीवन में रहकर भी उससे दूर से रहते हैं। बंगाल में कहीं उनकी जमीन जायदाद थी, उसी से जो प्रति-वर्ष आय होती, उनका गुजारा चल रहा था। गाँव में अपनी सारी जमीन उन्होंने अपने एक अभिन्न मित्र को सौंपी हुई थी। वही सारी व्यवस्था करते और जो उससे आय होती वह काशी भेज देते। उन्हें सभी अभय दादा के नाम से जानते हैं, आज तक कोई भी यह न जान पाया की उनकी इस विरक्ति के अन्दर कौन-सा रहस्य छिपा हुआ है। शायद पूर्णिमा इस रहस्य से परिचित है किन्तु आज तक विश्वास का स्मरण कर वह एक शब्द भी ओठों पर न ला सकी।

जब से पूर्णिमा काशी आई है, तभी से अभय दादा के घर में रौनक आ गई है। घर भरा-पूरा और स्वच्छ रहने लगा है, तुलसी के पौधों

में हरियाली आगई है। अभय दादा तो यहां वर्षों से अपने जीवन के दिन पूरे कर रहे है, पूर्णिमा भी उसी मार्ग की पथिक बन गई है।

यद्यपि पूर्णिमा यहाँ सभी प्रकार से सुखी है किन्तु आज भी वह अपने कलकत्ते के घर की स्मृतियो को भूल नही पाती। रह-रह कर उसे अजीत की याद आती है, दीप्ति और मजु की याद आती है। अनिल की भी याद उसे बहुत आती है और वह सोचने लगती है कि यदि दीप्ति विवाह के बाद उसे अपने साथ न ले जाती तो बिना मा-बाप के उस लड़के का क्या होता! उसने क्रम से अर्जीत की बात अभय को बताई थी और इससे वह काफी प्रसन्न था कि पूर्णिमा ने जीवन में जो कार्य किया है, वह प्रत्येक के लिए सम्भव न था। इस बात से पूर्णिमा उससे कम नाराज नही थी कि वह न दीप्ति के विवाह में आया और न ही अर्जीत के, जब कि उसे दोनों समय निमंत्रण भेजा गया था किन्तु अभय के तर्क के आगे वह निरुत्तर हो गयी थी। उसने कहा था, 'पुन्नू इसमें मन को दुःखी करने जैसी कोई भी तो बात नहीं है। तुम तो जानती ही हो। आज से छब्बीस वर्ष पूर्व जो प्रण किया था उसी को अब तक निभाता चला आ रहा हूं। अब तो पुन्नू! काशी से तभी हिलूंगा जब विश्वनाथ अपने पास बुला लेंगे।' इसके बाद उनके मुख पर एक गंभीरता व्याप्त हो गई थी। उनकी आंखों में वही मूक वेदना जैसे पूर्णतः अनुशासित होने पर भी अनियंत्रित होती जान पड़ती थी।

पूर्णिमा ने आँखों में आँसू भर कर कहा था 'भैया लोगों की कलुष-भ्रान्ति का बोझ अपने मस्तक पर आखिर कब तक धारण किये रहोगे? तुम्हारा सारा ही यौवन-काल इस निर्दोष प्रायश्चित्त ने पतझड़ के समान सुखा डाला, अब कुछ दिन कहीं चल कर रहो तो बदन भरे।'

तू रोती है पगली!' अपने सजल नेत्रों पर बलात नियन्त्रण कर उन्होंने कहा था, 'तुझ जैसी नारी की पवित्रता की रक्षा के लिए मैं एक तो क्या सौ-सौ जन्मों को भी यों ही काटने की सामर्थ्य रखता हूँ, यह तो कुछ भी नहीं है, और हाँ, अब तू आ गई है तो मेरी अन्तिम

साध भी पूरी हो जायगी।' कुछ क्षण ठहर कर वे कहते गये, 'जब तू छोटी थी'''बहुत छोटी, तभी से हम दोनों खेले थे, पढ़े-लिखे थे'' तूने मुझे राखी बाँधी थी और मैंने जैसी भली कल्पना की थी वही हुआ। तू बड़ी हुई, मैं भी बड़ा हुआ, किन्तु हमारी भावनायें तो वही रहीं, इसके बाद भी लोगों ने हम पर झूठा कलंक लगाया तो क्या हुआ? देखती है न? हम आज भी वही हैं, और अंतिम साँस तक रहेंगे। वकील साहब सच्चे आदमी थे, उन्होंने तुझे खूब पहचाना। लोगों के बुराई करने पर भी तुझसे विवाह किया, पर काल ने उन्हें जल्दी छीन लिया'''उस दिन तेरा सिंदूर पुँछ जाने की खबर सुनकर खूब ही रोया था'''पर तू जाने, उससे गया हुआ वापिस तो नहीं आ जाता, अतः मन को संतोष देना ही पड़ा।'

अभी पूर्णिमा कुछ कहने ही जा रही थी कि डाकिये ने आकर एक बड़ा-सा लिफाफा उसके सामने रख दिया। धड़कते हाथों से उसने पत्र खोला और पढ़ गई, इस बीच उसके मुख पर उत्सुकता और वात्सल्य के भाव अंकित होते रहे, अभय को इसीसे यह अनुमान लगाने में देर न लगी कि अजीत का पत्र है। फिर भी उसने पूछ ही लिया, 'अजीत का पत्र है न?'

'हाँ', पूर्णिमा ने हर्षित मन से कहा, 'कल शाम बहू को लेकर आ रहा है।'

'अच्छा!' अभय ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'वह सामान आज ही खाली कर डालो। दोनों को उसी में ठहराने की व्यवस्था करनी होगी।'

'मैं भी यही सोचती थी।' पूर्णिमा ने कहा, 'पर वह तो एक ही दिन यहाँ ठहरने को लिखता है। पंजाब जा रहा है।' इसके बाद पूर्णिमा ने वह सारा ही पत्र अभय को सुना दिया। अजीत ने उसमें पूर्णिमा के जाने के बाद से अब तक का सारा इतिहास लिख डाला था, फिर शराब पीने की घटना लिख कर क्षमा माँगी थी। इसके साथ ही उसने घर से निकलने की कहानी पर सविस्तार प्रकाश डाला था। अब

वह पंजाब जा कर पुनः माता-पिता के ऋण मे मुक्त होकर पिता के पुराने स्कूल के स्थान पर एक हाईस्कूल बनाना चाहता था और इसी-लिए पंजाब जा रहा था इस बात का भी पत्र में उल्लेख था।

अभय ने पत्र सुनकर कहा, 'तो यह सभी बातें आज तक उसने तुम्हें न बताई थीं ?'

पूर्णिमा के मातृत्व पर इससे एक ठेस सी लगी, किन्तु शीघ्र ही उसने इस कल्पना को मन से तिरोहित करते हुए कहा, 'मैंने आज तक उसके पूर्व जीवन के बारे में पूछा ही नहीं, तब क्या वह स्वयं बताता ?' यह कहकर सन्तोष के भाव मे उसने पुनः कहा, 'मैंने ही क्या उसे यह कभी बताया है कि अभय दादा मेरे सगे भाई नहीं हैं, दीप्ति भी आज तक इस बात को न जान पाई। जो व्यक्ति गाँव वालों को ठोकर लगा कर कितने ही वर्षों से यहाँ मूक साधन कर रहा है, उसके बारे में भी मैं कुछ नहीं कह सकी तब वह ही अपनी दुःख भरी कहानी क्यों सुनाए ?'

अभय ने कहा, 'पुन्नू ! तुम नाहक मेरी प्रशंसा करती हो। मेरे कर्त्तव्य की बात को गुण बताना ठीक नहीं है। गाँव मे तो मैं यों ही चला आया। जहाँ के लोग ही इतने संकीर्ण हो वहाँ क्या रहना।' इसके पश्चात् उन्होंने पूर्णिमा के उत्तर की प्रतीक्षा न की, वे पैरों में खड़ाऊँ पहन, बाजार चले गये।

उनके जाने के बाद न जाने क्यों, पूर्णिमा स्तब्ध सी बैठी रही। उसके मन की आँखों में वर्षों पहले का वह दृश्य नाच उठा, जब रक्षा-बन्धन के दिन गाँव के बाहर अभय ने पूर्णिमा का भाल चूम लिया था और कहा था, 'पुन्नू, अब तेरी शादी होने जा रही है न ! क्या वहाँ भी तू भय्या को याद कर सकेगी ?'

उसने कहा था, 'भय्या, जो तुम्हारा स्थान है वह क्या कभी पूरा हो सकेगा ? तुम जहाँ हो वहाँ से जिस दिन उतर जाओगे, उस दिन तुम्हारी पुन्नू का निर्जीव शरीर धरती पर लोट रहा होगा।' इसके बाद हर रक्षाबन्धन पर राखी बँधवाने के लिये आने का उसने अभय से

वादा ले लिया था। वह सोचती गई, 'इसके बाद किसी चुगलखोर ने किस प्रकार इस चुम्बन की घटना को बढ़ा-चढ़ाकर गाँव में फैलाया था और किस प्रकार पूर्णिमा की शादी रुक गई थी।'''अभय दादा पर लाँछनों की बौछार, उनके द्वारा कलकत्ते के एक मित्र वकील के साथ पूर्णिमा का विवाह कराया जाना और विवाह के ही समय यह प्रण करके काशी चले आना कि अब जीते जी यहाँ न लौटूँगा, यह सभी कुछ उसके मन की आँखों में नाच उठा। उसने सोचा, अभय दादा न जिद में आकर न विवाह किया, न संसार के सुख देखे' वह कितनी निर्भागा है, जिसके कारण एक महामानव का लहलहाता जीवन रेगिस्तानों में बदल गया। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

अगले दिन प्रातः ही अजीत देहरादून एक्सप्रेस से काशी के भीड़ भरे स्टेशन पर मंजु और पप्पी को लिये उतरा तो उसे अधिक परेशानी उठानी न पड़ी। पूर्णिमा रेलवे के पुल की सीढ़ियों पर एक कान्तिवान सी और ओजस्वी से लग। वाले व्यक्ति के साथ खड़ी रेल से उतरने वाले यात्रियों में अपने अजीत को ढूँढ रही थी। अजीत पप्पी को गोद में लिए, कुली के सर पर सामान लदवा कर ज्यों ही सीढ़ियों की ओर बढ़ा, कि उसकी दृष्टि हठात पूर्णिमा पर ठहर गई। पूर्णिमा ने भी उसे देख लिया था और जिस प्रकार ग्रीष्मकाल में प्रचण्ड तपन से त्रस्त पक्षीगणों के पिपासा भरे नेत्र शीतल फुहारों की प्रतीक्षा में व्योम की ओर लगे रहते है, उसी प्रकार पूर्णिमा के नेत्र भी इतने दिनों से विलग अपने पुत्र को मानो नेत्रों में भर लेने को अधीर हो रहे थे। उसके हृदय में तीव्रता से उठती वात्सल्य की लहरें अजीत को स्वयं में आत्मसात कर लेने को व्यग्र थी।

अजीत ने भीड-भाड़ से एक कोने की ओर बचते हुए पप्पी समेत पूर्णिमा के चरणों में माथा टेक दिया, मंजु पीछे खड़ी प्रतीक्षा करती रही। इतने दिनों के बाद उसे वे चरण मिले थे जिन पर नित्य प्रति उठ कर वह श्रद्धा-सुमन चढ़ाकर तब कहीं अपने नित्य के कार्यों को प्रारम्भ

करती। पूर्णिमा को उसके इस भाव से जितना सुख आज प्राप्त हुआ वह शायद कलकत्ते के इतने दिनों के साथ में भी न हुआ होगा। वह शीघ्र ही उसे उठा लेने के बजाय कुछ क्षण तक उसी मुद्रा में भाव-विभोर खड़ी मातृत्व की पावन स्मृतियों में खोई-सी रही और फिर चेत में आने पर उसने एक झटके से अजीत के कन्धे पकड़ कर उसे वक्ष में सटा लिया। उस क्षण उसके नेत्र सजल हो आये थे और अन्तर के गर्भी भाव उमड़कर बाहर आ जाने को व्यग्र हो रहे लगते थे। उसने साड़ी के छोर से अपने सजल नेत्रों को पोंछा और फिर अजीत के माथे को चूमते हुए वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा, 'आखिर माँ की याद आई तो न ?' और फिर उसके हाथ से पप्पी को लेकर उसे जी भर कर चूमा, आशीर्वाद दिया। तब तक मंजु आगे बढ़ आई। उसने भी सास के पैर छुए।

पूर्णिमा ने मंजु को आशीर्वाद देते हुए उसके माथे को चूमा और फिर अभयदादा की ओर संकेत करते हुए अजीत को बताया, ये तुम्हारे मामा हैं बेटा।'

अजीत जो अब तक उनके बारे में पूछना ही भूल गया था, इस बात से लज्जित सा होते हुए उनके चरण छूते हुए बोला, 'इतने दिनों से आपके बारे में माँ से बहुत कुछ जानकर भी इस क्षण भूल कर बैठा हूँ। चाहे कितना ही बड़ा हो जाऊँ, आप लोगों के सामने तो बच्चा ही हूँ। इस कारण अपराध करना अपना अधिकार समझते हुए भी क्षमा की आशा आपसे करता हूँ।

उसे आशीर्वाद देते हुए अभय दादा जोर से हँस पड़े। प्यार से अजीत की पीठ पर थपकी देते हुए उसी स्वर में बोले, 'अकारण ही भूल का जामा पहनकर स्वयं में हीन भावना को क्यों आने देते हो भाई ! हाँ, तुम्हें देखकर आज बड़ी खुशी हुई। जैसा पुन्नू बताती थी वैसा ही पाया।'

तब तक मंजु ने भी झुक कर उनके पैर छू लिये। अभय दादा ने उसे आशीर्वाद देते हुए हँसी के स्वर में कहा, 'बहू ! तुम दोनों की निभ तो ठीक रही है न ! देख अगर कभी कोई बात हो तो हम लोगों को अवश्य

खबर दे देना, हम सब ठीक कर देंगे।'

मंजु इसका क्या उत्तर देती। लजाकर पीछे हट गई। पूर्णिमा ने आगे की ओर चलते हुए अजीत से पूछा, 'बेटा, ठीक से तो हो न ?'

'हाँ माँ,' उसने कहा, 'ठीक से ही हूँ, पर आपका अभाव बहुत खला।'

'रहने दो बेटा !' पूर्णिमा चलते-चलते बोली, 'मेरा अभाव जरा भी खला होता, मेरी जरा भी सुधि तुझे होती तो तू वह सब कभी न करता। तूने बहुत बुरा किया बेटा ! बहुत बुरा।'

मंजु ने यह बात सुन ली थी, वह क्षण भर में ही समझ गई कि माँ उसे किस कारण प्रताड़ना दे रही हैं। वह यह भी जानती थी कि अजीत ने जो कुछ भी किया, चाहे वह अच्छा था या बुरा, किन्तु उसका मूल कारण वह स्वयं थी। इस बात से अजीत का दुःख नहीं यह सोच वह सास के निकट आई और फिर अत्यन्त ही नम्र वाणी में बोली, 'माँ ! इस सबके लिये तुम्हें जितना कोसना हो मुझे कोस लो। बड़ी होने के नाते तुम जो भी दण्ड दोगी उसे श्रद्धापूर्वक मैं ग्रहण कर लूँगी। इन्हें कुछ न कहो, दोष सारा मेरा ही था।'

अब तक बातें करते हुए वे सभी स्टेशन के बाहर आ गये थे। अभय दादा ताँगे वाले से बातें कर रहे थे और बाकी सब एक स्थान पर खड़े थे।

मंजु की बात सुनकर अजीत का चेहरा लटक गया। वह मन-ही-मन ग्लानि का अनुभव कर रहा था।

पूर्णिमा ने मंजु की ओर देखते हुए कहा, 'बहू ! तू क्या कहती है ? बुरा काम करना तो प्रत्येक प्रकार से बुरा है न ! उसकी सफाई से क्या वे पाप धुल जाएँगे। तूने इसे गलत समझा और यह इस बात से दुःखी हुआ तो उस दुःख को दूर करने के लिये एक शराब ही बची थी ?'

'माँ ! इन्हें कुछ न कहो, मंजु ने अधीर होकर कहा, 'दुःख में मनुष्य आत्म-हत्या तक कर लेता है फिर इन्होंने ही···।'

'बहू ! यह तेरा पति है न !' पूर्णिमा ने उसकी बात को बीच में ही काट कर कहा, 'पर यह मेरा बेटा भी है, यह तू क्यों भूल गयी ?

पत्नी अपने प्रेम की मिठास में पति के दुर्गुणों को भूल जाती है लेकिन माँ उन बुराइयों की आग में जलती रहती है। तुम दोनों में मनमुटाव हुआ, उसने दुःखी होकर शराब पी ली। तुम दोनों बाद में फिर मिल गये, मन के सारे क्लेश दूर हो गये—पर बता तो सही, इन सब से वह दोष दूर तो नहीं हो सकता ?'

अजीत ने विह्वल होकर पूर्णिमा के पैर पकड़ने चाहे तो उसने बीच में ही उसे पकड़ लिया और मीठी-सी प्रताड़ना देते हुए कहा, 'नहीं रे नहीं ! इस बात के लिए तुझसे अपने पैर न छुआऊँगी, नहीं तो यह एक परम्परा बन जायगी। कुछ अनबन हुई कि शराब पी ली और फिर यह पाप माँ के चरणों में डाल दिया।'

व्यग्र होकर अजीत ने कहा, 'माँ ! जो भूल एक बार कर चुका हूँ, वह किस प्रकार भूली जा सकती है, वही बता दो। उस समय क्षणिक भावनाओं में बहकर जिस काम को आसानी से करके मैंने महत्वहीन-सा समझ भुला दिया, उसी के कारण तुम इतनी दुःखी हो यह तो मेरे लिए और भी असह्य है।···ठीक ही तो है, जो बुरा है, वह अनगिनत कारणों का आवरण चढ़ाये जाने पर भी क्या कभी भला हो सकता है ? उस बुराई के लिए मैं तुमसे क्षमा माँग कर तुम्हारे आदर्श जीवन को कलंकित करूँ, यह कितना बुरा है।' एक क्षण को वह अपने को जैसे सम्हाल न सका, उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। काँपती-सी आवाज में व्यग्र हो उसने पूर्णिमा के हाथ को अपने हाथ में लेते हुए कहा, '···पर माँ इसका जो भी प्रतिकार है, जो भी दण्ड है वही मैं स्वीकार करने को तैयार हूँ, पर तुम्हारा अपराधी बन कर मैं कितने दिन रह सकूँगा भला ?'

पूर्णिमा का मातृत्व छलक उठा। आँखों में हर्ष और वात्सल्य के मोती झलक आए। उसने प्यार से अजीत के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, 'तू तो निरा बच्चा ही रहेगा बेटा ! देख तो, मेरी आँखों में कुछ देख रहा है ?'

'हाँ माँ, देख रहा हूँ।'

'क्या देख रहा है भला ?'

'जो कुछ देख रहा हूँ ।' अजीत ने गंभीर स्वर में कहा 'जो कुछ देख रहा हूँ, वह क्या शब्दों मे बताया जा सकेगा माँ ?'

पूर्णिमा के मुख के भाव एक क्षण में ही परिवर्तित हो गये। स्मित हास्य की एक रेखा मुख पर बिखेरते हुए उसने कहा, 'इतना जान कर भी तू ऐसी बात कहता है ? लड़का कितना ही बुरा हो अन्त में माँ उसे छाती से लगा ही लेती है। इस प्रसग पर बहुत हो चुका, अब बता आगे तो ऐसा नही करेगा न ?'

अजीत ने गर्दन नीचे झुका कर कहा, 'तुम्हें वचन देकर ही यदि मैं उस बात को निभा पाया तो क्या हुआ ! विना वचन दिये ही निभा लेने दो।'

'अच्छा बेटा !' पूर्णिमा ने कहा, 'वचन नही लेती। मुझे तुझ पर जितना विश्वास है, वचनों के बँधन में उसका महत्व भी उतना न रहेगा। तुम ठीक ही कहते हो।'

तब तक अभय दादा तागा लेकर सामने आ गये। अपनी हँसी की आदत पर काबू न पाकर वे बोल ही पड़े, 'पुन्नू ! बेचारा थका-मांदा आया है, पर तू है कि अभी सारी बातें करके ही दम लेगी।'

पूर्णिमा ने हँसकर उत्तर दिया, 'भय्या, जीवन भर एकाकी रह कर तुम क्या समझ पाओगे कि माँ का हृदय क्या है।'

इस बात पर सभी हँसे विना न रह सके। अजीत, अभयदादा और स्वयं पूर्णिमा ने भी जहाँ उन्मुक्त ठहाके लगाये वहाँ मँजु भी पलकें नीची किये हँसी न रोक सकी।

इस प्रकार अजीत काशी पहुँचा और भारत की कोटि-कोटि जनता के हृदय में बसे इस नगर की छटा में खो सा गया। ताँगा जब मणि-कर्णिका घाट के चौक से संकरी-सी गली में प्रविष्ट हुआ तो पूर्णिमा ने उसे दूर से मकान की ओर सकेत करते हुए कहा, 'वह रहा हमारा मन्दिर।'

अजीत ने नेत्रों से सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा, 'मा, ऐसी जगह पर रहने के बाद भी तुम्हें क्या कलकत्ता याद आता है ?'

जब तक वह उसका उत्तर देती, तब तक तांगा मकान के पास आ गया। अभय दादा ने सामान उतरवाते हुये अजीत से पूछा 'पसन्द आई काशी ?'

'बहुत !' अजीत ने उत्तर दिया।

क्षण भर ही में तांगे को विदा कर सब घर में बैठे जलपान कर रहे थे।

बातों-ही-बातों में एक दिन पल के समान बीत गया और फिर बिछोह की घड़ी भी आ गई। उसे आना ही था।

पूर्णिमा ने उसे आने वाले भविष्य के बारे में समझाया, सेहत ठीक रखने और बहू से प्रेमपूर्ण व्यवहार की बात की और फिर माथा को चूमती हुई जब वह स्टेशन पर अजीत को छोड़ने गई तो उसके चीत्कार को सुन आस-पास खड़े यात्रियों के नेत्र भी सजल हो गये, कमजोर हृदय की महिलाओं ने आँखे ढक ली। जब पूर्णिमा के पैर छू कर उसने उससे विदा ली तो ट्रेन चल पड़ी थी—दौड़ कर उसने डिब्बा पकड़ा और वर्षों के बाद अपनी अन्तिम साध पूरी करने चल पड़ा।

१६

वर्षों के बाद अजीत माहेवाल की ओर लौट रहा था, किन्तु उसे लगता था जैसे वह एक लम्बा स्वप्न देख कर उठा हो। यह सड़क अब अच्छी और पक्की बन गई थी, चारों ओर खड़े खेतों में गेहूँ की सुनहली बालियाँ लहलहा रही थीं, कहीं जोर-जोर की आवाज करते हुए पंप से पानी निकाल कर डोलों से ऊपर बह रहा था, स्त्री और पुरुषों के झुंड खेतों में इधर से उधर आ-जा रहे थे। उसे लगा जैसे सभी कुछ वही है, कुछ भी नया नहीं है। वह ताँगे में पप्पी को गोद में लिये मँजु को मार्ग के दृश्य दिखाता जा रहा था। मंजु आज अत्यधिक प्रसन्न थी, उसकी प्रसन्नता के कारणों में जहाँ एक यह था कि वह एक नये देश की यात्रा कर रही थी वहाँ यह भी था कि आज वह अपने पति की जन्मभूमि के दर्शन भी करेगी।

ज्यों-ज्यों गाँव निकट आता गया, त्यों-त्यों अजीत के मन की धड़कनें तेज होती गईं। धीरे-धीरे वह यह भी भूल गया कि उसके साथ उसकी पत्नी है, बच्चा है। वह एकाएक आज से वर्षों पूर्व के इतिहास में जैसे खो सा गया। अपने पिता की मृत्यु, वे परिस्थितियाँ, चरणदास का स्वार्थ और ज्योति की एक धुंधली-सी स्मृति उसके मस्तिष्क में कौंध गई। यह स्मृति इतना आकर्षण लिये थी कि इसके अतिरिक्त वे मान-अपमान की सभी बातें गोल हो गई। ज्योति अब कैसी होगी, उसकी शादी तो हो ही गई होगी। होनी तो थी ही आखिर उसका तो इसमें कोई जोर नहीं। माँ-बाप जैसे चाहें वही तो होगा। यह सब विचार तेजी से उसके मस्तिष्क में आते जा रहे थे और वह चित्रलिखा-सा ताँगे पर इसी प्रकार बैठा था जैसे काष्ठप्रतिमा हो। मंजु वहाँ की दृश्यावलियों में ही इतनी खोई हुई थी कि उसे अजीत के मन में उठने वाली

भावनाओं की कोई भी खबर न थी।

देखते-ही-देखते ताँगा गाँव के पक्के गलियारे की ओर मुड़ गया किन्तु अजीत उसी प्रकार स्तब्ध भाव से बैठा रहा। इस बार मंजु ने उसे गुम-सुम देख, झकझोर कर कहा, 'आ गया न गाँव ?'

'हैं ?' अजीत चौंक गया, मानो वह किसी दूसरी ही दुनियाँ में एकाएक फैंक दिया गया हो, किन्तु शीघ्र ही अपनी पूर्वस्थिति पर आते हुए कहा, 'हाँ मंजु ! अब हम पहुँच गये।'

मंजु ने अपने सिर की साड़ी ठीक कर ली, पप्पी को गोद में ले लिया और उत्सुकता के भाव लिए इधर-उधर देखने लगी।

अजीत ने ताँगे वाले से कहा, 'बाहर वाले पंडितजी के स्कूल पर ले चलना।'

'कौन सा स्कूल बाबूजी ?' ताँगे वाले ने ताँगे की रास को जरा ढीली छोड़ते हुए पूछा।

अजीत ने माथे पर विस्मय के भाव लाते हुए कहा, 'यहाँ और कौन स्कूल है ?'

'स्कूल तो यहाँ दो हैं साहब' ताँगे वाले ने कहा, 'एक बड़ा स्कूल है, एक छोटा।'

अजीत ने आश्चर्य प्रगट किया, 'अच्छा ! ये दोनों स्कूल कहाँ हैं और बने कब ?'

'हैं तो साहब दोनों आस-पास ही।' ताँगे वाले ने उत्तर दिया, 'बनाये किसने हैं यह मुझे पता नहीं। मैं तो पूरब का हूँ न। सरदारजी ने नौकर रखा है। यहाँ बस चौथी बार आ रहा हूँ।'

अजीत ने कहा, अच्छा तुम वहीं ले चलो ताँगा' और कुछ ही देर में ताँगा गाँव से बाहर उसी आम के बाग के निकट खड़ा हो गया। अजीत विस्मय से आँखें फाड़ कर चारों ओर देखने लगा, उसे अनुभव हुआ कि यह वास्तविकता है या सत्य। वह आज क्या देख रहा है ?

अजीत ने जो कुछ देखा वही वास्तविकता थी, सत्य था। उसी के

ग्राम के बाग में एक तीन मंजिला और एक मंजिला इमारत खड़ी थी। बीच का वह बाँस का घेरा हटा दिया गया था, जो चरणदास ने मुलखराज और अपने प्रेम के बीच एक दीवार के रूप में खड़ा कर दिया था। ग्राम के सभी वृक्षों की जड़ों में ईंट के पक्के घेरे बनाकर उनमें सफ़ेद चूना पोत कर उनकी सुन्दरता बढ़ा दी गई थी। कुआँ, जो कभी वीरान पड़ा रहता था और जिसमें सहस्त्रों पत्ते पड़े दुर्गन्ध पैदा करते थे अब स्वच्छ था। उसके चारों ओर पक्की मुंडेरी और चबूतरा बना दिये गये थे। ऊपर लोहे के सरिये खड़े कर चरखियाँ डाल दी गईं थीं। अभी अजीत स्तब्ध भाव से इस परिवर्तन को देख ही रहा था कि उसकी दृष्टि में बड़े स्कूल के प्रवेशद्वार पर लगा बोर्ड चमक उठा। उसमें मोटे मोटे अक्षरों में लिखा था, 'मुलखराज हायर सेकेंडरी स्कूल।'—उसे लगा कि उसकी हृदयगति बन्द हो जायगी। उसने भावावेश में मंजु को दोनों बाहुओं में कसते हुए कहा, 'मंजु! मेरा सपना गाँव वालों ने पूरा कर दिया'''देख, मैंने कहा था न कि मेरे पिताजी का त्याग कितना बड़ा था'''आज गाँव वालों ने अपनी पिछली भूल के प्रायश्चित्त स्वरूप यह सब कर डाला'''मैं आज कितना खुश हूँ मंजु!'

मंजु ने उससे अपने को मुक्त करते हुए संकोच के स्वर में कहा, 'तुम क्या अकेले ही सारी प्रसन्नता को पचा जाने की बात सोचते हो? ऐसा तो मैं न होने दूँगी। मेरा अपना भी तो भाग है न इसमें?'

वह उसे पकड़ने को आगे बढ़ा, तो मंजु ने लजाकर कहा, 'छोड़ो भी! तुम तो बच्चे बन गये। कोई देखेगा तो क्या कहेगा।'

'अरे हाँ।' वह हँसता हुआ बोला, 'यह सब तो मैं भूल ही गया था।' फिर कुछ क्षण रुकता हुआ वह बोला, 'यदि तुम कुछ देर यहीं ठहरो तो मैं भीतर जाकर थोड़ा-बहुत पता कर आऊँ।'

मंजु ने मुस्करा कर सर हिला दिया। पप्पी भी अपनी धुन में मस्त हँस रहा था और उसके दूध जैसे दाँतों की लड़ियाँ चमक रही थीं।

अजीत हर्षित नेत्रों से अपनी चिर-साध को पूर्णरूप में खड़ा देख

चारों ओर देखते हुए, स्कूल के भीतर गया । शायद उस दिन अवकाश था, अतः सारी कक्षाएँ सुनसान पड़ी थीं किन्तु प्रिंसिपल का कक्ष खुला था । बाहर एक चपरासी बैठा ऊँघ रहा था । अजीत ने उसकी ओर ध्यान दिये बिना पर्दा उठाकर भीतर प्रवेश किया । सामने अधेड़ आयु के एक भद्र पुरुष को फाइलों में व्यस्त देख वह ठिठका, फिर गला खखार कर उसने कहा, 'क्या मुझे आने की आज्ञा है ?'

प्रिंसिपल ने चश्मा उतार कर नीचे रखा और फिर आगन्तुक की ओर भव्य मुस्कान के भाव से देखते हुए कहा, 'अवश्य ।' अजीत के आगे आने और अभिवादन जताने पर प्रिंसिपल ने भी प्रतिअभिवादन जताया और आगे एक कुर्सी खिसकाते हुए उसे बैठने का संकेत किया ।

अजीत ने कुर्सी पर बैठते ही अपना पूर्ण परिचय दिया, अपने पिता के और उनके चिर संचित स्वप्न की चर्चा की और फिर स्नेह विह्वल होकर पूछा, 'प्रिंसिपल साहब ! मैं जानना चाहता हूँ कि यह सब क्या और कैसे हो गया । वास्तव में मैं स्वयं भी इस गाँव में एक ऐसे ही शिक्षा-मन्दिर की परिकल्पना लेकर आया था । आज वह सब पूरा तो हो गया, अब उन लोगों के प्रति मैं हार्दिक सद्भावना तो जता दूँ ।'

अजीत की बातों को प्रिंसिपल ने सहानुभूति के साथ सुना और फिर अत्यन्त ही आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए कहा, 'आपका अधिक परिचय अब मैं प्राप्त करना नहीं चाहूँगा । आपको यह सब देख कर हर्ष होना स्वाभाविक ही है क्योंकि यह सारा कुछ केवल कुछ ही वर्षों में हो गया । इसके भीतर आपके पूज्य पिता जी की महान् आत्मा की पवित्र भावना थी अतः ईश्वर ने उसकी कद्र की । जहाँ तक आपको इस पवित्र कार्य के सम्बन्ध में जानकारी कराने का प्रश्न है, उस सम्बन्ध में मैं यही चाहूँगा कि आप इन सबके लिए बहनजी से मिलें । वही सब कुछ बता सकेंगी ।'

'कौन बहनजी !' चौंककर अजीत ने पूछा ।

प्रिंसिपल ने उसकी ओर एक आश्चर्य की मुद्रा में देखा, 'अरे !

आप उन्हें नहीं जानते ? पर वे तो आपको अच्छी तरह जानतीं है ।' एक क्षण तक वह मौन भाव मे अजीत की ओर देखता रहा और फिर बोला, 'मैं स्वर्गीय चरणदासजी की सुपुत्री के बारे में कहता था ।'

'ओह !' अजीत ने एक ठंढी सास छोड़ते हुए कहा, 'समझा ! और हां यह चरणदासजी के बारे में आप क्या कह रहे हैं ।'

'जी हाँ, उन्हे मरे आज दो साल के करीब हो गये, और माता जी का स्वर्गवास पिछले तीन महीने पूर्व हुआ था ।' प्रिंसिपिल ने एक उच्छ्वास भरकर कहा । वह कुछ क्षण ठहर कर अपने चश्मे के शीशों को पोंछते हुए बोलता गया—'मैं एक साल से यहाँ हूँ, घर से दूर पड़ा हूं परन्तु बहन जी के व्यवहार से घर की दूरी ही अनुभव नहीं होती । धन-धान्य सभी कुछ तो उनके पास है, फिर भी वे तपस्वियों का सा जीवन व्यतीत कर रही हैं । आस-पास के सारे क्षेत्र में लोग उनकी पूजा करते हैं । उन्हें कोई शौक नही, शौक है तो बस यही कि एक बार इस बाग में अवश्य आती हैं सामने की क्यारी में जो फूल दिखाई दे रहे हैं वे उन्हीं के द्वारा पोषित हैं ।'

प्रिंसिपल की बाते सुनकर अजीत को लगा जैसे जीवन के समस्त लक्ष्यों को प्राप्त करके भी वह कुछ भूल गया है, कुछ रह गया है उसके जीवन में अपूर्ण ! मन के उमड़ते भावों पर नियन्त्रण पाते हुए उसने पूछा, 'विवाह तो कर लिया होगा न ?'

उसकी बात सुनकर प्रिंसिपल एक फीकी सी हँसी हँसकर बोला, 'शायद उन्हें आज तक इस बारे में सोचने का अवसर भी न मिला हो । जिनके सामने इतने कार्य करने को पड़े हों, वे विवाह को क्या महत्ता देंगी ?'

'फिर भी हिन्दू नारी बिना सम्बल के तो नहीं चल सकती । विवाह तो अवश्यक है' अजीत ने कहा ।

विद्रूपात्मक हँसी का भाव चेहरे पर लिये प्रिंसिपल ने कहा, 'आप भी क्या बातें करते हैं प्रोफेसर ! सदा कमजोर आदमी को सम्बल की

आवश्यकता हुआ करती है, वे तो स्वयं न जाने कितनों की सम्बल है।'

'ठीक है' अजीत ने कहा, 'मैं उनसे अभी मिलूँगा, किन्तु क्या आप फिलहाल यहाँ कोई ऐसी व्यवस्था कर सकेंगे, जहाँ मै अपनी पत्नी और बच्चों को ठहरा सकूँ।'

चौंक कर प्रिंसिपल ने पूछा, 'अरे, आपने बताया क्यों नहीं पहले से ! कहाँ हैं ?'

बाहर खड़े हैं' कहकर अजीत उठा और प्रिंसिपल के साथ क्षण भर में वह वहाँ पहुँच गया जहां मंजु पप्पी को लिये खड़ी थी।

एक-दूसरे का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् प्रिंसिपल ने शिष्टता प्रदर्शित करते हुए कहा, 'स्कूल के पिछवाड़े मेरा निवास है। रहने के लिये काफी स्थान है। आप उसे अपना ही घर समझिये। फिर यह तो आपका ही गाँव है। आपको भला किसी से पूछने की क्या आवश्यकता है। चलिये ...।'

कृतज्ञ भाव से बेडिंग लिये अजीत प्रिंसिपल के पीछे चल पड़ा। बाकी सामान ताँगे वाला उठाए चल रहा था। सबके पीछे मंजु थी। सहसा प्रिंसिपल ने अजीत के न कहने पर भी उसका होलडाल स्वयं ले लिया।

१७

इस हवेली में ज्योति को सर्वथा एकाकी रहते कई बरस हो गये हैं। पिताजी की मृत्यु के बाद से आज तक के घटना-चक्र का अवलोकन करने जब वह बैठती है तो उसे लगता है जैसे संसार एक अधूरा स्वप्न है, उसमें रहने वाला मानव एक स्वप्न है और उसकी समस्त इच्छाएँ भी एक अधूरे स्वप्न से कम नहीं। वह आज की बात सोचता है, कल की कल्पना करता है किन्तु कभी कल नहीं आता। जीवन के अट्ठाइस सालों बसन्त उसने किसी प्रकार काट डाले हैं, अब और वह काट भी न सकेगी।

पिता की मृत्यु के दो वर्ष बाद माँ ने मृत्युशय्या पर ज्योति से कहा था, बेटी ! तू ठीक ही कहती थी। भले आदमी की आह किसी को भी चैन नहीं लेने देती। तेरे पिताजी आज जीवित होते तो उनसे हाथ जोड़कर अभी प० सुलखराजजी की जमीन वापस करवा लेती। अब मेरे बाद तो तू ही यहाँ की सब कुछ है। कभी अजीत आए तो हाथ जोड़कर सभी कुछ लौटा देना।'

उसे माँ की वह बात याद आ जाती और फिर वह बात भी याद आ जाती जब माँ ने अन्तिम रात उससे कहा था, 'तू अपना जीवन बर्बाद न कर मुन्नी ! वह नहीं आएगा। मौसी को बुला ले और कहीं अपने को सौंप लेने दे।'

यह बातें कितनी पुरानी पड़ गई हैं। एक धुंध की तरह इनकी याद भर बाकी रह गई है। वह सोचती 'दुनिया में प्रत्येक एक-दूसरे पर अविश्वास करता है। माँ की मृत्यु के बाद उसके न जाने कितने रिश्तेदार उसे अपने साये में ले लेने को उत्सुक हो गये थे। मौसाजी और मौसीजी ने उसे कितने उपदेश पिलाए थे, कितने धर्म-अधर्म की

बातों का भय दिया था किन्तु अपने ही घर में उन्होंने उस पाप के साथ एक ऐसी कली को दफना दिया था, जो उनकी जवान लड़की की प्यास का परिणाम थी। वह जानती थी कि यह सब अधर्म है, पाप है किन्तु ऐसे वास्तविक पाप पर सदाचार की चादर उढ़ाए अपनी मौसी को वह पवित्रता के उपदेश देते देखती तो उसे जीवन से घृणा हो जाती।

आखिरकार उस पर किसी के उपदेशों का जामा न चढ़ा तो सभी अपने स्वजन उसे उसी के भाग्य पर छोड़ गये क्योंकि वे सब कर्त्तव्य के आमंत्रण पर आये थे, उपदेश देने पर कर्त्तव्य समाप्त हो गया तो सभी को जाना ही था।

उसे याद आया, मौसीजी ने जाती बार कहा था, 'बेटी ! तू कोई बच्ची तो है नहीं। पढ़ी-लिखी है। माँ-बाप के नाम पर आँच न आने देना। हमें जब बुलाएगी, तभी पास पाएगी।'

इसके बाद की घटनाएँ क्रमशः उसके मन-मानस पर छा जाती हैं। अजीत की जमीन-जायदाद मुक्त करवाने और उस पर इतनी सम्पत्ति खर्च कर इतने बड़े स्कूल खुलवाने में उसने कितनी आत्मिक शान्ति अनुभव की थी।

वह स्वयं को धोखा देना नहीं चाहती, इसीलिये इस भावना के पीछे छिपे अपने स्वार्थ को भी नजरों से ओझल नहीं करती—कभी वह आकर देखेगा कि उसके स्वप्नों से भी एक कदम आगे की बातें पूरी हो चुकी हैं, उसके घावों को तब कितनी शान्ति मिलेगी ! वह इससे भी आगे बढ़कर मन मंथन के प्रवाह में खो जाती—और जब वह देखेगा कि उसके स्वप्नों के पीछे उसका हाथ है, जिसे तुच्छ जानकर उसने वर्षों पूर्व आम के बाग में उसकी दी हुई भेंट ठुकरा दी थी तब वह ग्लानि से भर उठेगा…दौड़ा-दौड़ा उसके पास आकर कहेगा…तुम महान हो। तुम्हें समझने में मैंने भूल की…मुझे क्षमा करो…।

क्या इसीलिये वह स्वयं को आग में तपा रही है ? इतनी सी

आत्मतुष्टि के ही लिये वह यश की कामना करती है ? छिः, उसे अपने आपसे घृणा होने लगती है। वह सोचती है—चारों ओर स्वार्थ ! प्रेम, त्याग, बलिदान सभी में स्वार्थ की गन्ध !

इतना ही हो तो ठीक है किन्तु जिस यश की पूर्णता के लिये वह जीवन की दुपहरी को लाँघकर अब जीवन के संध्याकाल में प्रविष्ट हो रही है, यदि वह अवसर ही न आए तब क्या होगा ? क्या करेगी वह उस यश का और क्या होगा उसके जीवन का !

जब वह इन विचारों के कोलाहल से अपने आपको भयभीत अनुभव करती तब उठकर स्कूल में चली जाती। प्रिंसिपल सोमदत्त को नई व्यवस्थाओं के बारे में समझाती, स्कूल के पुस्तकालय की किताबें देखती और नई किताबें मंगवाने के लिये सचेष्ट रहती। वहाँ से अवकाश मिलने पर बाग में जाती। फूलों की उन क्यारियों की जड़ों में से फालतू घास के तिनके बीनकर फैंकती और उनमें स्वयं ही पानी देती।

स्कूल के लड़के श्रद्धा-भाव से उसे दीदी कहते और उसे स्वयं फूलों में पानी देते देख जब कोई लड़का उसके हाथ से पानी का फुहारा लेने आगे आता तो आँखों में बसी चिर वेदना की छाया की उपेक्षा सी करती हुई वह एक फीकी हँसी हँस देती और उसी भाव में कहती, 'अपने-अपने भाग का काम सभी को करने देना चाहिये भाई !'

वह स्नेह के स्वर में कहता, 'दीदी ! आप क्या कम काम करती हैं ? स्कूल की व्यवस्था, लायब्रेरी का इन्तजाम और न जाने क्या-क्या !'

वह एक कृपणीय मुस्कान बिखेर देती और बड़प्पन के भाव में कह उठती। अरे तो क्या हुआ बाबा ! काम तो सामने आते ही हैं, उनसे पीछे हटना अच्छा थोड़े ही है ?'

···और फिर वह उसी प्रकार अपने काम में लग जाती। मन-ही-मन वह उन लड़कों के बारे में भी सोचती जाती, जो उसके जरा से दुःख को सहर्ष सर पर उठा लेने में अपना अहोभाग्य समझते। सुधियों

की चादर फट जाती और उसी भाव में उसकी आँखें डबडबा आतीं, उसके हाथ जहाँ के तहाँ रह जाते और वह स्वयं से कहती, 'यही तो वह स्थान है जिसने मेरे अहंकार को चोट दी···किन्तु आज कोई इसे देखने वाला भी नहीं···मैंने सोचा था यह फूलों के पौधे और इन पर फूलने वाले सुन्दर फूल 'उसके' हृदय तक मेरा सन्देश पहुँचा देंगे··· पर···।'—वह साड़ी का छोर तनिक आगे को सरका लेती और उसके नेत्रों से अवसाद की बूँदें फूलों की जड़ों में एक-एक करके बैठ जातीं।

उस दिन एकाएक सोमदत्त ने उसे इस प्रकार की स्थिति में देख लिया था और पास आकर कहा था, 'दीदी आप रो रही हैं ?'

'कहाँ, चौंककर ज्योति ने कहा था और पलक मारने वुटने से रगड़ कर आँखें पोंछ डाली थीं, फिर कृत्रिम मुस्कान मुख पर लाते हुए कहा था, 'कहाँ भाई ! क्या कह रहे हो तुम ! इतने भाइयों के बीच में आराम से तो दिन काट रही हूँ। यहाँ भी रोऊँगी तो फिर चैन कहाँ मिलेगा ?'

सोमदत्त उसकी अन्तर्वेदना के बारे में सभी कुछ जानता है, क्योंकि उसे जालन्धर से देवेन्द्र ने भेजा था और ज्योति के जीवन की सारी ही घटनायें देवेन्द्र उसे बता भी चुका था। ज्योति के उत्तर से सन्तुष्ट न होने पर भी तब उसने सन्तोष का भाव व्यक्त किया था किन्तु वह उसे बलपूर्वक ही वहाँ से उठा कर क्लासों का निरीक्षण कराने ले गया था। उसे आशा थी कि इससे ज्योति की भाव-धारा भंग हो जायगी और हुआ भी वही।

गाँव-भर में उस सबसे बड़े मकान में वह अकेली सोती है। सारी रात दो चौकीदार घर के बाहर पहरा देते हैं। महरी कुएं से पानी भर लाती है और पंडिताइन सुबह-शाम खाना बना जाती है। जीवन धारण करने भर को वह खा लेती है और क्रम पूरा हो जाता है। बड़े-बड़े दिन तो किसी प्रकार कट ही जाते हैं किन्तु ये रातें नहीं कटतीं। पास ही किताबों की आलमारी है। उसमें भारतीय ज्ञान और दर्शन की पुस्तक

भी हैं और बड़े-बड़े साहित्यकारों की कृतियाँ भी है। वासना, भोग और जीवन की निस्सरता के उपदेशों की न जाने कितनी पुस्तकें उसकी आलमारी में भरी पड़ी हैं किन्तु उनमें उसे अब एक फीकापन-सा अनुभव होने लगा है। मन उचट जाता है तो वह कोई पुस्तक उठाकर देखने लगती है किन्तु यह क्या ! प्रत्येक संयम की बात करता है, धैर्य और कर्तव्य-निष्ठता के उपदेश देता है और यह सब केवल उपदेश के लिए ही है, ऐसा वह मानती है। ऊब कर वह कोई विदेशी उपन्यास उठा लेती है, उसके पात्रों के जीवन से अपनी तुलना करने लगती है। जो नायिका अपने आप में महान् दिखाई देती है, उसमें भी वह त्रुटियाँ निकालती जाती है। उसे लगने लगता है वह उन सभी से महान् है। त्याग, बलिदान और प्रेम किसमें वह किसी बड़े उपन्यास की पात्रा से कम है ? बल्कि चारित्रिक और यौन सम्बन्धों में विदेशी उपन्यासकार इतनी ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाए है अभी। जिसे एक बार हृदय समर्पित कर दिया उसी को सर्वस्व दे दिया यह चरित्र भारतीय नारी का ही है। वह सोचती है—वह ऐसी भारतीय पात्राओं में महान् है ! कभी अपनी इस महत्व आकांक्षा की भावना से वह स्वयं को दो रूपों में देखती है। एक रूप होता है वह जो उसके हृदय का वास्तविक रूप है, जिसमें मानवगत सभी स्वार्थ, इच्छायें, यश की कामनायें और किसी को पाने मात्र के लिए उत्पन्न त्याग की भावनायें हैं और दूसरा रूप वह होता है जिसमें बाहर के सभी लोग उसे सर्वत्यागिनी के रूप में देखते हैं, वाह-वाह करते हैं, उस पर श्रद्धा उड़ेलते हैं। वह समझ नहीं पाती कि इनमें से सत्य क्या है, किन्तु इनमें से दोनों ही को उसे सत्य मानना पड़ता है। अपने-अपने स्थान पर दोनों ही रूप सत्य हैं। टालसटाय तो एक महान् मनीषी हैं, वह उन्हीं का उपन्यास पढ़ने लगती है तो उसे नारी एक भूख के रूप में दिखाई देती है, जिसे सदा वासना तृप्ति के लिए पुरुष की कैंचुल बनना पड़ता है। वह ऊब जाती है और किताब रख देती है। फिर आलमारी में से कई एक मनीषियों के ग्रन्थों को उलट

पलट कर देखने लगती है किन्तु एक बात उसे प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है—पुरुष ! वासना !

कोई भी साहित्यकार, कोई भी दार्शनिक इस सत्य से परे नहीं जा पाता कि वासना असत्य है ! भोग और तृप्ति मिथ्या हैं। जो इनके आलोचक हैं और जो समर्थक है—सभी इस सत्य के चौगिर्द परिक्रमा कर रहे हैं। नानक जी ने कहा है, 'काम, क्रोध, मद लोभ सभी का परित्याग कर मन को ईश्वर में लगाओ, 'यह सभी कुछ तो सत्य है किन्तु इन व्यसनों की आवश्यकताओं की सत्यता से स्वयं नानक जी भी क्या इनकार कर सके हैं ? कोई भी तो इनकी संज्ञा को मिटा नहीं सका है।

विचारों के उहापोह में वह करवटें बदलती रहती और उसे लगता उसके मस्तिष्क की शिराएँ फट जाएँगी और उनमें प्रवाहित हो रहे ये विचार कण-कण होकर जमीन पर छितरा जाएँगे।

उसके मन में पवित्र विचारों की भी सृष्टि होती और जिन्हें लोग अपवित्र कहते हैं उन विचारों के आक्रमण में भी वह स्वयं को न रोक पाती। कभी वह सोचती कि वह इस त्याग और यश के जीवन का परित्याग कर दे। अजीत की स्मृति को मन से पोंछ दे और फिर उन तरंगों में स्वयं को बहा दे, जिसे लोग यौवन की आँधी कहते हैं। इस पक्ष का वह स्वयं ही तर्कों द्वारा समर्थन कर लेती और उसे इसमें एक ठंडक-सी अनुभव होती किन्तु तभी उसके अन्तर में बैठी हुई एक निराली ही आत्मा मानो बलात इन भावों पर अंकुश सा लगा देती। अब तक का त्याग-तपस्या और लोगों के मन में बैठी उसके प्रति असीम श्रद्धा की भावना—ये सभी उसे मानो पुकार-पुकार कर अपनी महानता का उपदेश देते, उसके यश को अनन्त ऊँचाई पर खड़ा करके कहते, 'देखो ! यहाँ खड़ी होकर भी तुम नीचे गिरना चाहोगी ?'

···और अन्ततः आदर्शों, उच्च भावनाओं और यश के उपदेशों के आगे वह हार मान लेती। उसे कुछ दिनों तक और जीवन की नौका

को खेने का बल प्राप्त हो जाता तब वह उसी प्रकार की भावनाओं में डूब जाती—मानो यही सत्य हो, यही शिव और यही सुन्दर हो।

एक दिन उसे देवेन्द्र का पत्र मिला, बिना किसी सम्बोधन के ही लिखा था, 'अभी-अभी तोषी के फूल से शरीर को इन्हीं हाथों से चिता की लपटों में जला कर आया हूं ·····एक दिन जिन हाथों से उसकी सूजड़ी मांग में सिन्दूर भर कर स्वयं को मैंने गौरवान्वित अनुभव किया था···आज उन्हीं हाथों से उसे आग देकर भी मैं जी रहा हूं···जो होना था हो ही गया, व्यर्थ अपने को दुःखी न कीजियेगा···।'

स्कूल के पुस्तकालय में ही पत्र पढ़कर उसने मेज पर माथा टेक दिया था और उस प्लाईवुड के चमकदार फर्श पर क्षण-भर में ही उसकी आँखों ने एक मौन वेदना बहा दी थी। स्वयं में असीमित दुःखों को दबा जाने वाला उसका अन्तर जैसे तब हार मान गया था।

उसी शाम वह स्कूल के चपरासी को लेकर जालन्धर की गाड़ी में बैठ गई थी और रात के दो बजे जब उसने देवेन्द्र के द्वार पर दस्तक दी थी तो स्वयमेव वह खुल गया था।

इतनी रात उसे देख देवेन्द्र कुछ क्षण को अपना दुःख भूल गया था। सर के बिखरे बालों को हाथों से ही पीछे की ओर करते हुए वह आश्चर्य से बोला था, 'अरे आप ? इतनी रात गये ?'

ज्योति का मन भर आया था। वह कुर्सी पर बैठते हुए केवल इतना ही कह पाई थी, 'जिया जी ! (जीजा जी) तोपी !'

देवेन्द्र माथा टेककर बैठ गया था। ज्योति को रोकते हुए उसने कहा था, 'देखिये ! अब रोने से क्या होगा ? जो बात थी वह तो बीत गई !'

पर ज्योति खूब जी भर कर रोई थी 'हाय। तोपी ! न दुश्मन !'

अपने रोने पर वह स्कूल के चपरासी के बारे में भी भूल गई थी, जो बेचारा अब तक बरामदे में खड़ा था। स्वयं ही जब अवसाद के आँसू वह चुक गये तो वह हिचकियाँ लेती हुई अपनी साड़ी के छोर से आँखें

पोंछती सम्हलकर बैठ गई थी। कुछ देर ठहर कर उसने पूछा था, 'जियाई, क्या हुआ था ?'

'मौत का बहाना था।' देवेन्द्र ने उसी प्रकार गर्दन झुकाए हुए कहा था, 'पहले मामूली बुखार था, फिर धीरे-धीरे शरीर में सूजन आई और परसों शाम अस्पताल में···।' उससे बात पूरी न की गई।

'हाय मरी !' कहकर ज्योति ने दोनों हाथों को सिर पर रख लिया था और देवेन्द्र ने बलपूर्वक उसे रोक लिया था। इसके बाद चारपाई के सोने की व्यवस्था कर प्रातः तक वह तोशी की ही बातें करती रही थी और भोर होते-होते उसने देवेन्द्र के रोकने पर भी स्वयं रसोई में चाय बनाकर एक प्याला देवेन्द्र को देते हुए कहा था, 'जियाई ! पी भी लो ! आखिर कब तक ऐसा करोगे।'

'नहीं मैं चाय नहीं पियूँगा।'

'पी लो जियाजी ! मेरी कसम···पी लो···!' उसने अपनी कसम दिलाकर बलात देवेन्द्र को चाय पिला दी थी और इससे उसे अत्यधिक सन्तोष प्राप्त हुआ था।

उस सारे दिन बहुत सारी बातें देवेन्द्र को वह समझाती रही थी। एक नौकर रख लेने और दुःख भुला देने की बात कह वह शाम की गाड़ी से अमृतसर वापस लौट आई थी।

—आती बार उसके मन में एक बात उठी थी। बात कितनी असंगत थी इसका स्मरण कर आज भी वह ग्लानि से भर जाती है। स्टेशन पर जब देवेन्द्र उसे विदा कर लौट गया था तब ट्रेन के चलने पर उसने सोचा था, 'क्यों न वह देवेन्द्र से जीवन का नाता जोड़ ले ?'—किन्तु क्षण भर बाद ही उसे अपने विचार पर ग्लानि हो उठी थी। मन-ही-मन उसने स्वयं से कहा था, 'छिः तू कितनी क्षुद्र है, तुझसे तो कीच भी अच्छी है, जो स्वभाव से ही गदली है, फिर तू तो इतनी उज्ज्वल होकर भी ऐसी बात सोचती है ?'

—तब से अब तक वह अपने स्वजनों से दूर, एक वनवासिनी का

सा जीवन बिता रही है । कभी मां, कभी पिताजी और कभी तोषी की स्मृतियाँ उसके अन्तर मे उबाल लाने को काफी है,***और अजीत ! हां, वही—जिसके अभाव में वह आज इतने वैभव की स्वामिनी होने पर भी स्वयं को भिखारिणी सदृश समझती है । क्या वह आयेगा ? यही वह प्रश्न है जिसका उसे कोई उत्तर आज तक नहीं मिला किन्तु इसके बाद भी वह आज तक जीवित है ।

१८

उस शाम वह बैठक के कमरे में बैठी प्राइमरी स्कूल के अछूत बच्चों की लिस्ट देख रही थी, जो प्रधानाध्यापक ने उन्हें मुफ़्त पाठ्य-पुस्तकें दिलवाने के लिए उसी के कहने पर बनाकर भेजी थीं। इतने ही में धोती कुर्ता और पैरों में चप्पल पहने चुपचाप एक आदमी को बैठक में घुस आते देख पहले तो वह कुछ न कह सकी और जब उस व्यक्ति के अभिवादन जताने पर उसने प्रत्युत्तर में हाथ जोड़े तो विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देख वह केवल इतना ही कह सकी, 'आप!'

अजीत ने उत्तर में केवल सर हिलाया और वह बिना ज्योति के कहे ही पास रखी कुर्सी पर बैठ गया। कुछ क्षण तक दोनों मौन भाव से एक दूसरे को देखते रहे, फिर अजीत ने ही मौन भंग किया, 'मुझे बड़ा दुःख है कि आज मैं अपने बीच में न चाची को ही पा रहा हूं न चाचा जी को ही।'

ज्योति गर्दन झुकाये मौन रही।

अजीत ने फिर कहा, 'जितना ही दुःखी हुआ था उतना ही आपकी कीर्ति इस गाँव में सुन कर वे दुःख उस प्रसन्नता में तिरोहित हो गये···।'

पहली बात से ज्योति को विशेष सुख की अनुभूति नहीं हुई थी किन्तु अपनी कीर्ति की बात सुन उसके मन में एक प्रसन्नता की हिलोर सी उठने लगी। मन-ही-मन अपनी कल्पना को साकार होते देख उसे कितनी आनन्दानुभूति हुई, इसे वही जानती है।

अजीत कहता गया, 'अपने देश से दूर रहकर भी मुझे ये सपने दिन-रात कचोटते थे—मैं सोचता था कब ये पूरे होंगे पर आपने मुझे अवसर ही न दिया···मैं किन शब्दों में आपकी प्रशंसा करूँ···।'

वह अपनी प्रशंसा सुन जहाँ स्वमन में वर्षों से पले भाव सुमनों की तुष्टि अनुभव कर रही थी वहाँ उसे लज्जा भी अनुभव हो रही थी। वह इस अवसर पर क्या कहे, आखिर उसे भी तो कुछ कहना ही चाहिये। यह सोच, मन में बचा-खुचा साहस बटोर वह अत्यन्त ही मृदु स्वर में बोली, 'मुझे नाहक ही यश के शिखर पर चढ़ाकर क्यों लज्जित करते हैं। मैंने तो वही कुछ किया जो प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। कोई असाधारण बात तो नहीं हो गई।'

अजीत ने कहा—'जो हृदय से बड़े होते हैं उन्हें क्या अपने गुण कभी दिखाई देते हैं, पर सत्यता से कोई भला कैसे पीछे हट सकता है।'

ज्योति मन-ही-मन गद्-गद् हो गई। आगे सुनने की उसकी इच्छा ही न हुई। तत्काल उठकर उसने रसोईघर में जाकर पंडितानी से कहा, 'चाची! जल्दी कुछ दूध और नाश्ता लाओ। मेहमान आये हैं।'

पंडितानी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह बैठक में लौट आई। कुर्सी पर बैठते हुए गम्भीर भाव से पूछा, 'इतने दिन कहाँ रहे, ठीक तो हो न?'

'भाग्य ने खूब ही तो ठोकरें दीं, 'अजीत ने कहा, 'वैसे कलकत्ता में था और ठीक-बे-ठीक अब आपके सामने हूँ।'

'कलकत्ते में क्या कर रहे थे?'

'एक कालेज में पढ़ाता था।'

ज्योति ने उसमें व्यग्रता और गम्भीरता की भावना कम देखकर कहा, 'इतने दिनों तक गाँव की याद ही न आई होगी।'

'नहीं ऐसी बात तो नहीं है' उसने सामान्य स्वर में उत्तर दिया, 'अपने भावनाओं के देश को कोई कैसे भूल सकता है भला! पर समय जब तक प्रतीक्षा कराए उसके आगे क्या किसी का बस चला है?'

ज्योति ने मौनभाव से उसकी बात के समर्थन में सर हिला दिया।

कुछ देर तक गाँव के लोगों में कौन मरा कौन जिया, कहाँ क्या परिवर्तन हुए और आस-पास के गाँवों की क्या स्थिति है आदि बातों

की दोनों मे चर्चा होती रही। ज्योति और अजीत के बीच के संकोच और शिष्टाचार की दूरी क्रमशः कम होती जा रही थी। दोनों एक दूसरे से प्रश्न करते, उत्तर देते और फिर अगली बातों का क्रम प्रारम्भ कर देते। बातों के बीच में कभी ऐसे क्रम का छोर भी आ जाता, जब ज्योति को हृदय के भीतर एक कंपकंपी सी अनुभव होने लगती और वह सोचने लगती जैसे अब उसके मन को छूने वाली बात फूट ही पड़ेगी किन्तु तभी प्रसग काफी आगे बढ़ जाता और उसकी दौड़ मे ज्योति के अन्तर की कंपकंपी को मानो कुछ पल का विश्राम सा और मिल जाता।

बातों-ही-बातों मे अजीत ने कहा, 'प्रिंसिपल साहब कह रहे थे कि उस सारे बाग की पालना आप स्वय ही करती हैं।'

ज्योति का हृदय बल्लियाँ उछलने लगा और जैसे उसके मन की अधीरता ने व्यग्रतापूर्वक मन-ही-मन कहा, 'ओह ! आगे कहते क्यो नहीं !'

अजीत कहता जा रहा था, 'आपकी क्यारी के फूल तो बहुत ही सुहावने लगे।'

उसके जी में आया कि वह स्पष्ट रूप से कह दे, 'वह जगह याद नहीं आई आपको ?' किन्तु अपने ही मूर्खतापूर्ण विचार से वह लज्जित होकर रह गई। कहना क्या चाहा था, किन्तु मुख से सहसा निकल गया, 'अब मेरी यशोगाथा रहने भी दीजिये।' अपनी बात के अन्त में माथे से हट गई साडी का पल्लू पुनः माथे पर रखते हुए उसने एक भीनी-सी मुस्कान बिखेर दी।

सहसा अजीत को एक बात याद आ गई। सर से पैर तक ज्योति का सर्वांग निरीक्षण-सा कर वह तनिक आत्मीयता के स्वर में बोला, 'एक बात पूछ सकता हूँ ?'

ज्योति ने लज्जा से पलकें नीची करते हुए कहा, 'पूछिये।'

'यही कि आप, यह क्या हो गई हैं ?' अजीत ने उसकी ओर करुणा-भाव से देखकर कहा।

वह इस प्रश्न से चौंक गई, किन्तु शीघ्र ही सम्हल कर उसने कहा, 'कौन मैं ?…मैं ठीक तो हूँ ?' और वह फिर एक बार मुस्करा दी किन्तु यह मुस्कान वैसी ही थी जैसी एक अबोध बालक के मुख पर उसकी चोरी पकड़े जाने के समय होती है ।

एक ठंडी साँस खींच कर अजीत ने कहा, 'मैं जानता हूँ कि आप दुःख सहते-सहते सहनशीलता की सीमा को बहुत पीछे छोड़ आई हैं, फिर भी सत्य कृत्रिमता से क्या छिप पाता है । मैं जब यह देखता हूँ कि दूसरों के लिए आपने अपने को जला-जला कर क्षार कर डाला है तो मुझे असहनीय वेदना होती है । मैं पूछता हूँ क्या आपके प्राणों का कोई मूल्य नहीं है ?'

ज्योति की झिझक दूर होती जा रही थी । पैरों से फर्श पर एक लकीर-सी खींचती वह बोली, 'कोई किसी के लिए स्वयं को जलाकर क्षार नहीं करता और न ही किसी के प्राणों का कोई मूल्य आँका जाता । जिस दिन आप दुःखी होकर इस गाँव से गये थे, तब कितने आदमी आपके लिए क्षार हुए थे और तब किसने आपके प्राणों का मूल्य आँका था ?'

अजीत ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया, 'आपने !'

'सच कहते है ?' ज्योति ने अनुराग भरे स्वर में प्रश्न किया, 'सच कहते हैं आप ? क्या ऐसी अनुभूति लेकर आप यहाँ से गये थे ?'

अजीत कह गया, 'लेकर ही गया था वह बात नहीं, उसी अनुभूति को अब तक मन में संजोये लौटा हूँ ।'

ज्योति का जी चाहा कि अब हृदय का समस्त अनुभूतियाँ उड़ेल कर उसके समक्ष रख दे और रो-रो कर उससे कहे कि, 'मैं तुम्हारी हूँ… केवल तुम्हारी…।' —किन्तु फिर संकोच की दीवार ने उसे अपनी ओट में ले लिया और उसे अनुभव हुआ कि इतनी वयस प्राप्त करने पर भी वह कितने सस्ते रोमांस की बातें सोचती है । इसकी भला क्या आवश्यकता थी ।

तब तक पंडितानी एक गिलास में दूध, तश्तरी में मूँग के लड्डू और

दो गिलासों में पानी रखकर चली गई।

दूध का गिलास अजीत की ओर कर उसने मीठी वाणी में कहा, 'पीजिये न !'

'लेकिन आप ?' अजीत ने उसकी ओर देखकर पूछा।

'मुझे पीना होता तो मैं दो ग्लास नहीं मंगा सकती थी भला !' उसने एक धीमी-सी मुस्कान के साथ कहा, 'मैं सुबह दूध ले लेती हूं बस !'

'तो यह वापस कर दें।'

'क्यों ?'

'यों ही ?'

'अरे आप तो मेरी बात को बहाना समझ गये।' ज्योति ने मुसकराते हुए कहा, 'आप पडितानी जी से ही पूछ लीजिये न···दरअसल इस समय मैं कुछ नहीं लेती।'

अजीत ने अनुरोध के स्वर में कहा, 'लेकिन यदि मैं आपसे प्रार्थना करूं तब भी क्या आप अपने नियम पर अटल रहेंगी ?'

वह हँस पड़ी, बोली, 'अच्छा, मैं मूंग के लड्डू लिए लेती बस !' यह कहकर उसने मूंग का एक लड्डू तोड़ कर मुंह में भर लिया और जबर्दस्ती अजीत को दूध पीना पड़ा।

अजीत का यह अनुरोध उसे आज अजीब-सा लगा था। आज तक न जाने कितने ही स्वजन और आत्मीय उससे इसी प्रकार का अनुरोध कर चुके हैं किन्तु आज जो मिठास उसे अनुभव हुई, वह कभी नहीं हुई। मन-ही-मन उसने स्वयं से प्रश्न भी किया—आज सभी कुछ उसे परिवर्तित-सा क्यों लग रहा है भला ! किन्तु इसका उत्तर वह क्या देती।

दो परस्पर विपरीत धाराओं की यह आँखमिचौनी काफी देर तक चलती रही किन्तु दोनों में से कोई भी एक दूसरे की वास्तविक अनुभूति तक नहीं पहुँच पाया। एक ओर जहाँ श्रद्धा थी, कृतज्ञता और पूज्यभाव थे वहीं दूसरी ओर प्रतीक्षा, त्याग और आत्मसमर्पण के भाव थे। इनमें भी अन्तर था—एक ओर जीवन के सुखों में कोई नवीनता न थी और

दूसरी ओर थी अतृप्ति, व्यग्रता और कौतूहल !

कुछ क्षण फिर मौन छाया रहा। मन-ही-मन अजीत को एक बात खटकी और चूँकि वह जीवन में स्पष्टवादी होने का दावा करता था अत: उसने ज्योति से उसके विवाह के बारे में पूछने में कोई बुराई न समझी। आज से कई वर्ष की उस बात को याद करके उसे संकोच अवश्य हुआ, जब बाग में उसने ज्योति पर अधिकार जताते हुए कहा था; 'आप मेरी वाग्दत्ता हैं।'—अपनी उस बात पर वह तब जहाँ गर्व से फूल उठा था, इस क्षण उसी बात का स्मरण कर ग्लानि से गड़ा जा रहा था। उसने सोचा शायद ज्योति उस बात को भूल ही गई हो। पर नहीं, यदि भूली नहीं हो तो भी उसे उस बात के लिए आज क्षमा माँग लेनी चाहिए।

दूध का खाली ग्लास मेज पर रखते हुए अजीत ने गम्भीर भाव से ज्योति की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा, 'हाँ, यह तो आपने बताया ही नहीं कि आप क्या···?'

कहते-कहते वह रुक गया, किन्तु बात को अधूरी ही छोड़ देना उसे कुछ ठीक नहीं लगा, अत: साहस संजोकर उसने पुनः कहा, 'मेरे कहने का मतलब था ··शादी के बारे में आप मौन क्यों हैं ?'

ज्योति के लिये अजीत के सामने बैठे रह पाना कठिन हो गया था, लज्जा के मारे वह गर्दन ऊँची न उठा पाई और कुछ मिनट में आने के लिए कहकर भीतर चली गई। भीतर के कमरे में जाकर उसने दीवार पर माथा टेक दिया और सोचने लगी, 'अब शादी के बारे में क्या मैं ही अपने मुख से उनसे चर्चा करूँ ? वे ही मेरी स्थिति का ध्यान करते तो ऐसा न कहते,—उसके अन्तर का एक कोना कहने को तो यह कह गया किन्तु उसकी आनन्दानुभूति से क्या वह स्वयं को मुक्त रख सकी थी ? शायद नहीं।

आकर वह पुनः कुर्सी पर बैठ गई तो अजीत ने वही प्रश्न दोहरा दिया।

लज्जा के भार से स्वयं को सम्हालती-सी वह बड़ी कठिनाई से बोली, 'यही प्रश्न यदि मैं आपसे करूँ तब ?'

उसने जिस भाव से यह बात कही थी, अजीत वहाँ तक कैसे पहुँच पाता, अतः हँसी के स्वर में बोल उठा, 'मुझसे प्रश्न क्यों करती हो, मैं तो उस सीढ़ी को पार कर चुका हूँ, और फिर साधारण स्वर में कुछ व्यग्रता का-सा भाव मुख पर लाते हुए उसने कहा, 'हाँ, आपको यह तो बताना भूल ही गया कि कलकत्ता जाकर अनायास ही पैरों में बेड़ियाँ पड़ गयी,— फिर क्रम से वह कलकत्ता जाने, पूर्णिमा से परिचय और मंजु से विवाह की घटनाओं का सविस्तार वर्णन कर यहाँ तक पहुँचने की सभी बातें उसे बता गया।

यह सभी बातें सर झुकाए ज्योति सुनती गई और बिना कोई प्रश्न किए अपने ही सूर्यास्त का विवरण जिस रोचक ढंग से उसने कानों से नीचे उतारा उसकी पृष्ठभूमि में सर्वत्र उसकी महान धैर्य-शीलता अखण्ड हिमशिखर के समान अपने स्थान पर अडिग खड़ी दिखाई दी।

अजीत उसके अन्तर की गहराइयों तक नहीं पहुँच पाया, वह इस समय जीवन और मृत्यु की पगडंडी पर जा पहुँची थी, जहाँ दुःख-ही-दुःख थे, सुखों की कल्पना भी एक दुःख से कम न थी। जीवन के इतने बसंत जिस आशा से उसने यौवन के ज्वारों को ठेल कर बिता दिये थे, असीम दुःखों, वेदनाओं और अपमानों की आँधी को चीरकर भी वह जिस लौ की ओर अपने तृषित नेत्र टिकाए थी वही एक मृगमरीचिका के रूप में उसे प्यार का यह प्रतिदान देगी, ऐसी कल्पना भी उसे न थी किन्तु आज जो यथार्थ डरावने रूप में उसके समक्ष मुँह फाड़े खड़ा था उससे वह कैसे आँखें मूँद लेती। उसका यह दुःख ऐसा था जिसमें उसकी करुणा डूब गई थी किन्तु हृदय के भार को हल्का करने के लिए उसके अश्रुकोष में एक भी आँसू शेष नहीं बच गया था। अवसाद के आँसू प्रत्येक बड़े-से-बड़े दुःख को कम कर देते हैं किन्तु मानव-मात्र के लिए यह परिस्थिति कितनी बुरी है। वह भी यदि नारी के आँसू सूख जायें तो उसके लिए

तो आत्मा की शान्ति का बस एक ही मार्ग रह जाता है और वह है मृत्यु ! अजीत की बातें सुनती हुई ज्योति शायद अपने अन्तर से मौत की भयानकता को दूर कर, उसे एक वरदायिनी के रूप में मन के आसन पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा कर रही थी।

अजीत ने उन प्रसंगों को समाप्त कर कहा, 'ज्योति जी ! एक बात के लिए आपसे क्षमा माँगनी थी'' संकोचवश कोई भी शब्द मुख से नहीं निकल पाता।'

ज्योति जैसे संसार की हलचल, व्योम में गूँजने वाले पशु-पक्षियों के कलरव और पास बैठे अजीत की बातों से बेखबर-सी हो गई थी, मानो वह निस्पंद हो—शून्य !

अजीत ने उसे यों मौन देख, उसका ध्यान भंग करते हुए जिज्ञासा के भाव में पूछा, 'अरे ! आप बोलती क्यों नहीं, क्या बात है ?'

'हैं'' क्या कह रहे थे आप !' जैसे प्रगाढ़ निद्रा से जागते हुए ज्योति ने कहा। उसके माथे पर झिझक, चिन्ता और अपने मन की कमजोरी के प्रगट हो जाने के भाव थे। उसने सफाई-सी देते हुए कुछ खिंचे-खिंचे स्वर में आगे कहा, 'दरअसल आज-कल मुझे रात को जागकर पढ़ने का कुछ अजीब-सा रोग लग गया है, इसी कारण बातों के बीच में ही झपकी आ गई थी।' कुछ क्षण ठहरकर उसने साधारण भाव से फिर कहा, 'हाँ, आप क्या कह रहे थे, मैं सुन नहीं पाई।'

अजीत को लगा, कहीं वह किसी कारण दुःखी तो नहीं है। वह पूछ ही बैठा, 'आप एकाएक गम्भीर क्यों हो गईं, कोई बात तो नहीं है ?'

ज्योति ने इतने दिनों की मूक साधना में यही तो सीखा है, इसी को तो वह अपना कौशल समझती है कि स्वयं के दुःख को स्वयं ही पचा लिया जाय और जब दूसरा उसके दुःख को बँटाने का पात्र ही न हो, तब वह क्यों अपनी वेदना उस पर व्यक्त करे ! उसे लगा जैसे स्वदुःखों का प्रगटीकरण और वह भी अपात्र के समक्ष अपनी हीनता प्रदर्शित करने जैसा ही है। यही सोचकर अजीत की बात सुनकर उसने एक सर्वथा

बनावटी हँसी बिखेर दी और फिर कहा, 'आप तो दार्शनिकों जैसी बातें करते हैं, आप देख ही तो रहे हैं कि सभी प्रकार से मैं सन्तुष्ट हूँ, यहाँ के बच्चों का तथा अन्य सभी का जो असीमित स्नेह मुझे प्राप्त हो चुका है, उसे छोड़कर कुछ भी मुझे अच्छा नहीं लगता···और सच पूछिये तो···।' यहाँ तक कहकर वह कुछ ठहर गई किन्तु शीघ्र ही संकोच का आवरण उसने उतार फैंका और बात पूरी की···'सच पूछिये तो यही वे स्मृतियाँ हैं, जिनसे मैं विलग होना नहीं चाहती और यही कारण है कि मुझे सांसारिकता से विरक्ति-सी हो गई है।'

उसकी यह सरल-सी बात अजीत के हृदय को चीरती हुई पार निकल गई। मन-ही-मन उस नारी की महानता के आगे वह नत हो गया, उसकी महान साधना और त्याग के अनूठे आदर्श के आगे उसे संसार-भर की समस्त नारियाँ फीकी-सी लगने लगीं। मन की समस्त सद्भावनाओं को शब्दों द्वारा व्यक्त करता हुआ वह बोल उठा, 'चाहता तो नहीं था, कि आपको अपने फीके उपदेशों का पान कराऊँ किन्तु मन में उन्हीं भावों को प्रार्थना समझ कर ही यह अनुरोध आपसे करूँगा कि जीवन के अनुभव प्राप्त करने के लिए दो जीवन-साथियों की आवश्यकता संसार में होती है। दो पुरुष ही यदि उस क्रम में खड़े हो आगे बढ़ें तो भी उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती है और न ही दो नारियाँ इस उद्देश्य में सफल हो सकती हैं। प्रकृति ने इसीलिए नारी और पुरुष का निर्माण किया है। एक-दूसरे के समझौते के बिना यह दोनों शक्तियाँ अपूर्ण हैं—इनका एकबद्ध होना ही जीवन की पूर्णता है, सार्थकता है! मैं आपको आपके मार्ग से भ्रान्त नहीं करने जा रहा, बल्कि इसमें अपने स्वार्थ की पूर्ति देख रहा हूँ। अपने विचारों के प्रति आपकी श्रद्धा देख मुझे स्वयं भी आप पर असीम श्रद्धा हो गई है और उसी श्रद्धा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए मैं चाहता हूँ कि आप जीवन के खुले वातावरण में आयें, आपका भरा-पूरा संसार हो, सुखी गृहस्थी हो और मुझे यह प्रसन्नता स्थायी रूप में प्राप्त होती रहे।'

नारी प्रत्येक से श्रद्धा नहीं चाहती, अपितु किसी के समक्ष वह अपना वास्तविक स्वरूप रख देना चाहती है, सत्य एवं अहम् रख देना चाहती है किन्तु प्रत्येक नारी के जीवन में एक ही ऐसा व्यक्ति आता है। जैसे ज्योति के लिए अजीत था, अब उसीने यदि श्रद्धा की दीवार खड़ी कर दी तो वह क्या करे !

निदान उसने संकोच का सर्वथा परित्याग कर दिया किन्तु अपनी अन्तर्वेदना अजीत पर व्यक्त न होने दी। उसकी बात का उत्तर देते हुए वह बोली, 'अपने प्रति आपके हृदय में इतना आदर प्राप्त कर सचमुच ही मैं स्वयं को कम भाग्यशालिनी नहीं समझती किन्तु जहाँ तक इस सुझाव का सम्बन्ध है उससे मैं अधिक नहीं तो कम-से-कम कुछ दिन और मुक्त ही रहना पसन्द करूँगी। भविष्य की मैं अवहेलना नहीं करती, जैसा उचित होगा वह देखा जायगा।'

'अच्छा !' अजीत ने एक सहानुभूतिपूर्ण ठंडी साँस छोड़ते हुए कहा, 'यदि आपको दुःख होता है तो ऐसा कुछ भी न कहूँगा···आप जिस प्रकार सन्तुष्ट हों वही ठीक होगा।'

कुछ क्षण ठहर कर उसने पुनः कहा, 'वर्षों पूर्व, उस ग्राम के बाग में जो अशिष्टता भावोद्रेक में व्यक्त कर बैठा था, उसका स्मरण कर आज भी लज्जा से गर्दन नहीं उठा पाता। आज सोचता हूँ कितनी हास्यापद बात थी वह, उसी के लिए यदि क्षमा कर दें तो मन से एक भारी बोझ हट जाए।'

ज्योति अब उन प्रसंगों से बचना चाहती थी किन्तु पल-प्रतिपल अनजाने रूप में वे ही मानो उसे लील जाने के लिए सामने आ जाते, जो भी हो, उन प्रसंगों को किसी प्रकार काटना तो होगा ही यह समझ उसने गर्दन नीचे किए ही नम्र स्वर में कहा, 'प्रत्येक बात का कोई समय होता है। जब जिस बात का तात्कालिक प्रभाव होता है तभी उसकी चुभन भी होती है। उस समय उस बात के लिए सम्भव है आपको सत्य ही चुभन हुई हो, इससे मैं इनकार नहीं करती किन्तु आज यह बात

समय की लम्बाई के साथ-साथ फीकी पड़ गई तो उसे उभारना मैं उचित भी नहीं समझती। उस छोटी-सी बात के लिए अपने मन को त्रास देकर यदि आप दुःखी होंगे तो इसे मैं अपने ही प्रति अन्याय समझ लूँगी, ऐसी स्थिति में आपको बुरा नहीं मानना चाहिए।'

अजीत ने उसकी बात को सुनकर गर्दन नीचे झुका ली। उसके इस झुकने में श्रद्धा और पराजय दोनों ही भाव सन्निहित थे।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की अन्य बातें करने के पश्चात् ज्योति ने कहा, 'हाँ, देवी जी और बच्चे को क्या वहीं छोड़ आये हैं? साथ ही ले आना था, यहाँ की भूमि भी देख लेते।'

चौंककर और सम्हलते हुए अजीत ने कहा, 'अरे हाँ, बातों-ही-बातों में कुछ इतनी दूर पहुँच गया था कि आपको पत्नी और बच्चों के बारे में कुछ भी न बता सका। हम सीधे ही आपके प्रिंसिपल साहब के यहाँ उतरे थे। वहाँ उन्होंने ठहरा दिया। वे सभी वहीं हैं।

'अरे! तो आप सीधे यहीं क्यों नहीं उतरे।' ज्योति ने आत्मीयता के भाव में कहा, 'फिर तनिक गम्भीर-सी होकर बोली,'क्या इतना पराया-पन अनुभव किया आपने?'

'आप तो यथार्थ से बहुत दूर बहक गई।' अजीत ने अनमनेपन से कहा, 'जिन परिस्थितियों में मुझे यहाँ से जाना पड़ा था उनकी आज से तुलना करने यदि आप बैठी ही हैं तो इस बात को क्यों भुला बैठी हैं कि जो आदमी इतने वर्षों से यहाँ लौटा हो उसे इन सर्वथा बदली हुई परिस्थितियों का आभास क्या होता भला! फिर वहाँ यदि ठहरे तो वह क्या कोई पराया स्थान है? मुझे तो आज सारी हवा ही बदल गई लगती है। लोग उनकी भावनायें, सभी कुछ परिवर्तित दिखाई देता है और इसके ओर-छोर की ओर जब दृष्टिपात करता हूँ तो सर्वत्र आप ही आप दिखाई देती हैं।'

ज्योति ने हँसकर कहा, 'आप फिर मेरी ही प्रशंसा करने लगे।' कुछ क्षण ठहर कर उसने फिर कहा, 'आप तो बहन जी को आसानी

मे दिखाना नही चाहेंगे, मुझे स्वयं ही वहाँ जाकर दर्शन करने होंगे।'

'ऐसा क्यों, अजीत ने भी हँसी के ही स्वर में कहा, 'वह स्वयं ही आप से मिलकर प्रसन्न होगी।'

ज्योति ने पूछा, 'बच्चा कैसा है ?'

'बिलकुल चंचल, अजीत ने उत्तर दिया।

ज्योति हँस पड़ीं, अच्छा ? पिता की गम्भीरता नही आ पाई उसमें अभी तक।' फिर जैसे स्वयं ही उत्तर देते हुए उसने कहा, 'पर अभी जल्दी भी क्या है, समय आने पर वह भी आ जायगी।

सिर झुकाए ही अजीत उठ खड़ा हुआ। हाथ जोड़ते हुए उसने ज्योति की ओर देखकर कहा, 'अच्छा अब चलूँगा।'

ज्योति ने शिष्टाचार के स्वर में कहा, 'क्या जल्दी है, चले जाते !'

'कल प्रातः ही दर्शन करूँगा,' कहकर अजीत द्वार की ओर चल पड़ा। ज्योति उसे बाहर तक छोड़ने आई। दोनों ने एक-दूसरे को हाथ जोड़कर अभिवादन किया, अजीत तो अभिवादन करके चल पड़ा किन्तु ज्योति के जुड़े हाथ न जाने कब तक उसी स्थिति में रह गये। वह दूर तक अजीत को जाते निर्निमेष नेत्रों से निहारती रही। उस क्षण वह न जाने अतीत के किस दुःखद अध्याय की स्मृति में खो गई थी, इसे उसके सिवा और कोई नहीं जानता। वह देर तक उसी प्रकार खड़ी रही और जब अजीत उसके नेत्रों से ओझल हो गया तो अपनी अवस्था का चेत आने पर वह भारी मन से आकर चारपाई पर लेट गई।

वह काफी देर तक तकिये में मुँह छिपाए रोती रही, उसे लगा कि उसकी करुणा का स्त्रोत फिर फूट पड़ा है और उसे एक महान शान्ति मिली। मन में जितने भाव थे, जितनी करुणा थी उसकी कल्पना करके उसने मन को स्वतन्त्र छोड़ दिया। उसका यह सर्वथा मौन रुदन, यह मौन क्रन्दन जो केवल उसके अन्तस्थल के बोझ को कम करने के लिए था अवसर पाते ही द्रुत वेग से बह पड़ा। वह खूब रोई, इतनी रोई कि उसको रोने से उबकाई आने लगी फिर भी वह रोती रही।

मन-ही-मन उसने स्वयं से प्रश्न किया, 'अब तो सभी कुछ स्पष्ट हो गया ! कुहरे के बादल फट गये, अब क्या करेगी ?'

'इस जीवन में पीछे छूटे अतीत की कड़वाहट पीने से कहीं अच्छा है, स्वयं जीवन से हाथ खींच लेना—वही ठीक है—वही ठीक है'—आवाज आई ।

वह पूरी तरह संयत होकर उठ खड़ी हुई, उसने बरामदे में जाकर मुँह धोया । कपड़े बदले और फिर रसोई घर में जाकर पण्डितानी से कहा, 'चाची ! मैं देर से आऊँगी जरा स्कूल तक जा रही हूं । तुम अपना खाना खाकर मेरे लिये ढंककर जाना ।'

और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही वह एक शाल गले में लपेट चप्पल पहनकर स्कूल की ओर चल दी । मार्ग में उसे अपने ग्राम के दर्जनों लोग मिले । जो बड़े थे, उनका आशीर्वाद लेती, छोटों को प्यार और सद्भावना बाँटती वह स्कूल के प्रांगण में पहुँच गई ।

सोमदत्त को अपनी फूल की क्यारी में पानी डालते देख वह कुछ क्षण दूर ही ठिठकी रही, खड़े-ही-खड़े न जाने किस बात का ध्यान मन में आ जाने पर उसके नेत्रों से दो बूंद आँसू जमीन पर चू गये, जिनको किसी ने अपनाया हो चाहे नहीं किन्तु महान धरित्री ने प्यार से उन्हें अपने हृदय में संजो लिया ।

फुहारा खाली हो जाने पर सोमदत्त दोबारा उसे भर लाने के लिए ज्यों ही पीछे मुड़ा ज्योति को उस स्थिति में देख अवाक् रह गया । तत्काल फुहारा नीचे रख, वह ज्योति के पास आकर बोला, 'दीदी ! आप और ऐसे ?'

ज्योति का अन्तस्तल चीत्कार कर उठा, सारी दृढ़ता विच्छिन्न हो गई, उसने गले में फट आये रुदन पर जरा भी नियन्त्रण कर पाने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाते हुए कहा, 'भाई ! सभी कुछ देख लिया ! सभी कुछ देख लिया !'

'दीदी !' सोमदत्त का स्वर फट पड़ा, 'आप तो धैर्य की प्रतीक हैं ।

आप ही को देखकर तो हम सभी अपने दुःखों को भूल जाते हैं—आप ही इतनी कमजोर हो जाएंगी तो क्या होगा ?'

'कुछ नही होगा भाई,' वह हिचकियों के साथ बोली, 'अब कुछ भी शेष नहीं रहा। तुम्हारी दीदी का धैर्य आज उसी के सामने जवाब दे गया ···।' यह कह कर वह जोर से रो पड़ी, किन्तु उसकी रुलाई का स्वर उस छोटे से स्थान में ही खोकर रह गया।

सोमदत्त की आँखें भी भर आईं, वह अधीर होकर ज्योति को सान्त्वना देने के स्वर में बोला, 'नहीं दीदी नहीं ऐसा न कीजिये ! ऐसा न कीजिये !'

'तो क्या करूँ भाई ?' उसने उसी स्वर में कहा, जैसे वह इतनी ठगी गई हो कि उसे कोई भी मार्ग न सूझ रहा हो।

'आप मेरे साथ आइये,' कहकर सोमदत्त उसे लायब्रेरी के कमरे में ले गया, जो उस दिन बिलकुल सूना पड़ा था। जाते ही ज्योति एक बड़ी-कुर्सी पर बैठ गई, सोमदत्त उसी के सामने एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। कुछ क्षण तक मौन छाया रहा, फिर सोमदत्त ने ही मौन भंग करते हुए कहा, 'दीदी ! आप विवेकशील हैं, मैं तो आपके सामने एक बच्चा हूँ, भला आपको क्या बता सकूँगा, फिर भी इतना तो कहूँगा ही, कि आपको अपने ऊपर यों अत्याचार करने का कोई भी अधिकार नहीं है क्योंकि आपका जीवन केवल आपका ही नहीं है। इस स्कूल के बच्चों का, उनकी आशाओं का और सभी का आप पर अधिकार है।'

खीझ के स्वर में ज्योति ने कहा, 'ओह ! कर्तव्य ! कर्तव्य ! चारों ओर कर्तव्य ही की पुकार सुनाई देती है—मेरा स्वयं का कोई अधिकार नहीं है क्या कुछ ?' फिर पूर्ववत शान्त स्वर में कहा, 'सोमदत्त ! भाई, मुझे यदि तुम जीवित देखना चाहते हो तो कुछ दिन के लिये इस कर्तव्य की गाड़ी को स्वयं देखो। मैं इस तरह तो ···।'

सोमदत्त ने कहा, 'आप पर कोई बोझ नहीं है दीदी ! करने वाले दूसरे ही हैं, आप तो केवल उन्हें मार्गदर्शन ही करती रहें बस !'

'पर मेरा मार्गदर्शन कौन करे ?' ज्योति ने प्रश्न किया।

'भला सूर्य को कौन प्रकाश देता है दीदी ?' सोमदत्त ने गम्भीर स्वर में कहा, 'प्रेरक शक्ति आप में महान है। वह अपने ही तेज से उद्भासित होती रहती है और उसी से दूसरों को भी भासित करती है। आप तो स्वयं प्रकाशपुँज हैं, भला आपका मार्ग निर्देशन कोई क्या करेगा ?'

आँखों को पोंछते हुए ज्योति ने कहा, 'न भाई ! अब तुम तर्कों से मुझे बाँधने की चेष्टा न करो। जीवन को यथार्थ के तर्कों से मापा तो जा सकता है किन्तु इन दोनों में मेल नहीं है, यह मैं आज भली भाँति समझ गई हूँ। अब तो तुम इतना करो कि कुछ दिन यहाँ का सारा भार अपने कन्धों पर उठा लो, जिससे मैं निश्चिन्त होकर कुछ दिनों के लिये कहीं घूम फिर आऊँ। इसी से शायद मन का कुछ भार कम हो जाएगा।'

'कहाँ जाना चाहती हैं आप ?' सोमदत्त ने पूछा।

'कहीं भी हो आऊँगी,' ज्योति ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया, 'कोई बच्ची तो हूँ नहीं, जो कहीं खो जाऊँगी। कुछ दिन मौसी के ही पास रहूँगी कुछ दिन और कहीं घूम फिर कर चली आऊँगी !'

सोमदत्त ने गम्भीर होकर कहा, 'आप जैसी आज्ञा देंगी दीदी, वही होगा। आपकी आज्ञा का पालन करने का सौभाग्य जिसे एक बार मिले वह धन्य है। परन्तु ! आप जितने दिन भी हम लोगों से दूर रहेंगी, उतने दिन सभी अपने आपको बिना साये के भवन तले पड़े महसूस करेंगे।'

गम्भीर हो वह बोली, 'भाई ! तुम लोगों का इतना प्रेम पाकर मुझे और किसी चीज का कामना आज नहीं रह गई है। मैं दूर रहकर भी सदा तुम्हारे पास हूँ यही जानकर मुझे कुछ दिनों के लिये छोड़ दो।'

'अच्छा, वही होगा,' सोमदत्त ने एक ठण्डी साँस छोड़कर कहा।

वह फिर बोली, 'मैं कल ही यहाँ से चली जाऊँगी। हाँ, जाने से पूर्व तुमसे एक वचन लूँगी।'

'कहो दीदी !'

'यही कि···' कुछ रुककर उसने कहा, 'तुम मेरे बारे में प्रायः सभी कुछ जानते हो, और वह सब तुम्हीं तक रहना चाहिये। अजीत बाबू आ गये हैं, वे शायद यहीं रहेंगे—नहीं रहना चाहेंगे तब भी किसी प्रकार उन्हें मैं इसके लिये मना कर ही जाऊंगी, किन्तु यह ध्यान रखना कि जिस अन्तर्वेदना की उन्हें मैंने अब तक हवा भी न लगने दी वह उन पर किसी भी प्रकार प्रगट न होने पाए। यदि कभी भूल से भी ऐसा हो गया तो उनका जीवन क्लेशमय हो जायगा जो किसी भी हालत में मुझे स्वीकार न होगा। बोलो, बचन देते हो न ?'

उसकी बात सुन सोमदत्त की आंखें छलछला आईं, उसने ज्योति के चरणों को हाथों से छूकर पुनः माथे पर लगाते हुए कहा, 'दीदी ! तुम जो हो उसकी संसार में कोई संज्ञा नहीं ! कोई नहीं।' और वह बच्चों के समान फूट-फूटकर रो पड़ा।

ज्योति ने उसे उठाते हुए कहा, 'छिः मेरे पैर छूकर तुम मुझे इतने नीचे गिरा रहे हो भाई ! जहाँ हृदय इतने पास हों वहाँ इतनी श्रद्धा शोभा नहीं देती। उठो, आँसू बहाते हो ? अभी तो मुझे समझा रहे थे अब स्वयं ही साहस छोड़ बैठे यदि मैं भी तुम्हारे साथ रोने लगूँगी तो क्या यह अच्छा लगेगा ?'

सोमदत्त उठ बैठा ! ज्योति ने अपनी साड़ी के छोर से उसकी आँखें पोंछकर कहा, 'अच्छा हँसो तो भला ?'

सोमदत्त ने कहा, 'दीदी ! प्रत्येक समय हँसना क्या आसान है ? तुम्हीं क्या हँस सकती हो ?'

'मैं···।' मुस्करा कर ज्योति ने कहा और फिर जैसे दुःख नाम की किसी संज्ञा से वह आज तक अपरिचित हो उन्मुक्त भाव से हँस पड़ी, बोली, 'मैं तो हजार बार हँस दूं। हँसना तो चाहिये ही, रोना तो जीवन भर के लिये लगा है।'

सोमदत्त ठगा सा उसकी हँसी को देखता रह गया किन्तु उस हँसी

की आत्मा में छिपे क्रन्दन को उसके अन्तर ने सुन लिया। श्रद्धा-मिश्रित स्तब्ध भाव से उसने कहा, 'संसार का प्रत्येक व्यक्ति दीदी नहीं हो सकता, यही समझ लो।'

ज्योति कुछ क्षण चुप रही, फिर बोली, 'अजीत बाबू की व्यवस्था ठीक से तो कर दी है न ?'

'हाँ अपने भर तो कर ही दी है।'

'और जिस चीज की आवश्यकता हो, घर से मंगवा लेना, 'ज्योति ने कहा, 'मेरी अनुपस्थिति में तुम पर घर की देख-भाल का सारा भार भी रहेगा।'

सोमदत्त ने सिर हिला दिया।

वह बोली, 'आओ जरा अजीत बाबू की पत्नी के दर्शन कर लूँ।'

चलिये, कहकर सोमदत्त उसके पीछे-पीछे चल दिया।

सीढ़ियों से नीचे उतरते हुए ज्योति ने पूछा. 'बंगाली हैं न ?'

'हाँ,' सोमदत्त ने उत्तर दिया।

क्षण भर ही में वे दोनों स्कूल के पीछे सोमदत्त के निवास पर आ गये। कमरे में गये तो अजीत को एक मेज पर कुछ लिखते पाया। मंजु खाना बनाकर अभी हटी ही थी, पर पप्पी रास्ते भर की थकान से पस्त बिस्तरे पर बेखबर सोया पड़ा था।

सोमदत्त को और ज्योति को आया देख अजीत उठकर खड़ा हो गया, मंजु भी वस्त्र सम्हालकर उठ खड़ी हुई। अजीत ने अभिवादन के पश्चात् अपनी पत्नी से ज्योति का परिचय कराया तो मंजु ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा, 'आपकी बहुत प्रशंसा सुन चुकी हूँ, जैसा सुना था वैसा ही देख भी रही हूँ।'

ज्योति ने हँसते हुए कहा, 'क्षण भर में ही धारणा भी बना ली बहन !'

मंजु भी मुस्करा पड़ी।

ज्योति फिर पप्पी के पास गई, प्यार से उसे सोते में ही कई बार

चूमा, उसकी सुन्दरता की प्रशंसा की और फिर सामने रखी कुर्सियों में से एक पर बैठ गई। क्रम से बाकी सभी भी बैठ गये।

कुछ क्षण बाद उसने अजीत की ओर घूमकर कहा, 'आज ही दिल्ली से मौसा जी का पत्र आया है। मुझे कल वहाँ जाना होगा, इसी कारण शाम को ही यहाँ चली आई। मैंने सोचा बहन जी के दर्शन कर लूँ और आपसे यह वायदा भी ले लूँ कि अब आप गाँव छोड़कर बाहर नहीं जाएँगे।'

अजीत ने कहा, 'अभी शाम को तो आपने ऐसी कोई चर्चा भी न की थी, यह आकस्मिक विचार कैसे बन गया।'

'असल में पत्र आपके जाने के बाद मुझे मिला था,' ज्योति ने कहा, 'वहाँ जाना ही जरूरी होगा और अब तो यहाँ आप और भाई सोमदत्त है, बहन जी है। आप लोगों को यहाँ का भार देकर तो मै कुछ दिन और भी बाहर घूम फिर आ सकती हूँ।'

सभी मौन थे किन्तु मंजु से न रहा गया। आत्मीयता जताते हुए बोली, 'बहन! अभी तो हम आये है, और अभी आप चली गईं तो क्या यह अच्छा होगा? हाँ, कुछ दिन ठहर कर चली जाना।

'आप लोग आ गये है इसीलिये तो मैं जा पाऊँगी' ज्योति ने कहा, 'नही तो यहाँ से क्या कभी मेरा पीछा छूटता? रही कुछ दिन ठहर जाने की बात, सो जल्दी की बात न होती मैं अपनी ओर से इतनी जल्दी करती भी नहीं।'

फिर उसकी बात का किसी ने प्रतिवाद न किया।

इसी बीच अजीत ने उसके सामने कुछ कागज रखते हुए कहा, 'आपके पास से आने के बाद में यह एक योजना तय्यार कर रहा था। मेरी सलाह है कि जहाँ इतना श्रम करके आप लोगों ने गाँव में स्वर्ग उतार दिया है, वहाँ थोडा-सा और परिश्रम करके यह हायर सैकेन्डरी स्कूल डिग्री कालेज के रूप में परिवर्तित हो सकता है। देखिये, इस

प्रकार योजना बनाई है ।' यह कहकर उसने अपनी योजना को सक्षेप में ज्योति के सामने रख दिया। ज्योति ने कागज-पत्र उलट-पुलटकर देखने के बाद उसी को वापस करते हुए कहा, 'आपकी योजना भला अच्छी क्यों न होगी। ठीक है, आप लोग मिल-जुलकर इसे पूरी कर डालिये । मेरा जो कुछ है, वह सभी आप अपने काम में ले लें ।'

अजीत ने कहा, 'आपके निर्देशन के सिवा हमें और किसी भी चीज की कामना नहीं है ।'

उसने एक फीकी-सी हँसी हँसकर कहा, 'भला मैं आप लोगों को क्या निर्देशन दे सकूँगी, इतनी समझ मुझमें कहाँ है। हाँ, आज्ञा जो भी आप देंगे उससे मुकरना मैं चाहूँगी भी नहीं ।'

उठते हुए उसने अजीत से फिर कहा, 'मैं आप लोगों पर ही यहाँ का भार छोड़कर जा रही हूँ ।'

उसके पीछे-पीछे सभी आये। मंजु के अनुरोध करने पर भी उसने कुछ ग्रहण न किया। बाहर आकर उसने बारी-बारी से सभी को अभिवादन किया और फिर घर की ओर चल पड़ी। सोमदत्त उसके इन्कार करने पर-भी उसके साथ हो लिया ।

१६

अगले दिन अपराह्न के बाद मामूली-सा सामान लेकर ज्योति ताँगे के पास आई। गाँव के सैकड़ों स्त्री पुरुषों ने उसे हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ भावभीनी विदाई दी, उनमें बच्चे भी थे, जवान और बूढ़े भी थे। सभी उसे इस भाव से विदाई दे रहे थे मानो वह कहीं अनन्तलोक की यात्रा पर जा रही हो और कौन जानता है कि वह वास्तव में कहाँ की यात्रा पर जा रही है, क्या पता वह फिर कभी इस गाँव में वापस भी लौटे या नहीं। सच ही तो है, वह स्वयं भी तो इस बारे में कुछ नहीं जानती कि उसकी मंजिल कहाँ है।

आज कई वर्ष के बाद वह इस गाँव की भूमि से बाहर जा रही थी। उसने विरक्त भाव से गाँव की बड़ी-बूढ़ियों के पैर छुए, जो यह जानकर रिसते नेत्रों से उसे आशीर्वाद दे रहीं थीं कि वह तीर्थयात्रा पर निकली है। वे वृद्ध जिनके केश सफेद हो गये थे, आँखों की पुतलियाँ फीकी पड़ गई थीं और हाथ-पैर काँपते थे—उन्होंने पास आकर ज्योति के माथे पर हाथ रखा, उसे आशीर्वाद दिया और सिख, मुसलमान, स्पृश्य-अस्पृश्य सभी उस क्षण वर्गवाद व जातिवाद के दायरे से सर्वथा बाहर निकल गीले, नेत्रों से अपनी पुत्री को विदाई देने के लिए खड़े थे।

अजीत, उसकी पत्नी, उसकी गोद में बैठा पप्पी और सोमदत्त उसके स्कूल के अध्यापक सभी उस समय विषाद की मूर्ति बने मौन थे।

ताँगा चलने को हुआ तो सोमदत्त ने ज्योति के पैर छूने चाहे, ज्योति ने बीच में ही उसे रोकते हुए कहा, 'भाई ! कितनी लज्जित करोगे मुझे। बहन के पैर छूकर, उसे क्यों क्लेश देते हो। फिर मैं जल्दी ही तो लौट आऊँगी इतनी व्यग्रता भी किस काम की।'

सोमदत्त शिशु के समान रो पड़ा, अजीत की भी आँखें छलछला आईं। सोमदत्त उसी स्वर में बोल उठा, 'दीदी ! हम सबको भूल न जाना।'

ताँगे वाले को आगे चलने को कह, वह ठीक से बैठ गई और सोमदत्त से बोली, 'भाई ! तुम सबसे विमुख हो कर अधिक दिन न रह सकूँगी !'

ताँगा बढ़ चला, गाँव की गली को धीरे से चीरता हुआ और सैकड़ों आँखें पलकों में श्रद्धा की बूँदें लिए उसी ओर देखती रहीं। ज्योति यह सब न सह सकी तो उसने शाल में मुंह छिपा लिया। गाँव के बाहर ताँगा पहुँचा तो ताँगे से झुक कर थोड़ी-सी मिट्टी हाथों में ली और उसे माथे से लगा लिया। उस गाँव को यही उसका मूक प्रणाम था।

ताँगे के आँखों से ओझल हो जाने पर लोग अपने-अपने घरों को लौट गये, सभी उसी के बारे में चर्चा करते जाते थे, कोई कहता, 'देवी है।'—कोई सीधी देहाती भाषा में कहता—

'ए हो जेई कुड़ी रब्ब किसमत वाले नूँ ई देंदा है।'

सभी ने उसकी महानता के ही गुणगान किये, उसके त्याग, संयम और यश की ही यशोगाथा दुहराई, किसी ने भी उसकी स्वयं की मान्यताओं के बारे में न सोचा, उसकी इच्छाओं और इन महत्कार्यों के पीछे छिपी आकाँक्षाओं को न देखा—मानो किसी की महानताएं केवल संसार के लिए ही हों, अपना उसका कोई अस्तित्व ही जैसे न हो। यही संसार का क्रम है और यही वे स्वार्थ हैं जो धर्म-अधर्म, यश और अपयश के पीछे विभिन्न रूपों में छिपे हैं। अपने जीवन को क्षार-क्षार करने के बाद मानव को क्या मिलता है ? थोड़ी सी सहानुभूति, यश और जय-जयकार। क्या यही उसकी तृप्ति है ? शायद इसके आगे भी वह कुछ चाहता है किन्तु यश और महानता के दिग्दिगन्तव्यापी कोलाहल के सामने उसकी इच्छा की आवाज इतनी मन्द पड़ जाती है कि उसे स्वयं

भी कुछ सुनाई नहीं देता । यही कुछ यदि ज्योति के साथ हुआ तो इसमें आश्चर्य कैसा ?

शाम तक वह अमृतसर पहुँच गई । दिल्ली का टिकिट लिया और रात्रि के निविड़ अन्धकार को चीरकर द्रुत वेग से भागती ट्रेन की गोद मे स्वय को सौंप दिया ।

वह नहीं जानती कि उसे कहाँ जाना है, क्या करना है—फिर भी अपने मन के क्रन्दन में ही डूबी वह जा रही है । वह त्याग और तपस्या, यश और महानता की बेड़ियों को तोड़ आज भाग आई है, उन बातों की कल्पना कर अब भी उसकी साँस घुट रही है ।

ट्रेन निरन्तर आगे की ओर बढ़ी जा रही है, वह सोच रही है :— 'जीवन की नौका कहाँ जाकर ठहरेगी ?'—कोई उत्तर उसे नहीं मिल पाता—ट्रेन दौड़ रही है ।

× × ×

भोर का तारा क्रमशः क्षीण होता जा रहा था, इक्के-दुक्के पक्षी-गण अपने-अपने नीड़ों पर ही कोलाहल करने लगे थे, मुर्गे बाँग दे रहे थे और विभिन्न पशु-पक्षी अपनी-अपनी आवाज में प्रातः का अभिनन्दन कर रहे थे । निरन्तर एक ही क्रम से जीवन की गाड़ी को ढो रहे इन्सान अपने-अपने कार्यों से जूझने सड़कों पर चल पड़े थे । यह सवेरे का संकेत था ।

देवेन्द्र ने उठकर दरवाजा खोला, तो शाल ओढ़े किसी नारी को गर्दन झुकाए, पीठ ऊपर किये दरवाजे के सामने पड़ी देख वह चौंक गया । उनींदी आँखें मलते हुए उसने ध्यान से देखा तो कोई नारी ही थी । इस अवस्था में यह कौन हो सकती है, विचार करने पर भी वह जब वास्तविकता न जान सका तो धीरे से खाँस दिया ।

सहसा उस नारी के शरीर में एक हलचल सी हुई, उसके हाथ कुछ आगे बढ़े और रेंगते हुए उन्होंने देवेन्द्र के पैर पकड़ लिये । देवेन्द्र के

.ये यह सब एक स्वप्न था, वह ठगा सा खड़ा रह गया।

उस शरीर मे पुनः स्पन्दन हुआ, रेंगता हुआ उसका मुख देवेन्द्र के रो पर जुड़ गया और क्षण भर मे ही देवेन्द्र को लगा जैसे उसके पैरों कोई गरम-गरम तरल चीज बह रही हो। हड़बड़ा कर उसने कहा, 'ह सब क्या है ? कौन हो तुम ?'

'एक थकी हुई, पराजयपूर्ण महीन सी आवाज आई, 'जिया जी ! हूं, लुटी हुई यात्री हूँ—मुझे जगह दो जियाजी !' और फिर गरम-रम आसू देवेन्द्र के पैरो को सीचने लगे।

काँपते हाथो से उसके कधो को पकड़ देवेन्द्र ने उसे उठाकर खड़ा र दिया, उसे अपने बाहुओ का दृढ सहारा दिये वह देर तक उसकी झाई लता सी काया को निहारता रहा और फिर अत्यन्त ही भाव-र्ण स्वर मे बोला, 'तुम ! तुम्हें जगह देने की किसमें सामर्थ्य है ? म तो स्वय जगदात्री हो।'

वह उसके वक्ष मे सटकर रो पड़ी, 'जियाजी ! मै श्रद्धा माँगने आई हूँ···मै मैं···।' आगे उससे कुछ न कहा गया केवल पूरी क्ति से देवेन्द्र के वक्ष मे मुँह छिपा, उसने बाहुपाश से देवेन्द्र को कड़ लिया।

देवेन्द्र ने उसे दोनो बाहुओ मे अधर उठा लिया, फिर एक बाहु के सहारे उसे स्थिर रख दूसरे हाथ से उसके आँसू पोंछते हुए कहा, 'छिः रोते है कही !'

यह कह उसे पुनः दोनो हाथो मे देवेन्द्र ने उठा लिया और दिन-र की किरणो के प्रस्फुटन से पूर्व ही उसे भीतर ले जाते हुए उसने र बन्द कर दिये। शायद उसे डर था कि कही जिन्दगी की मनहूस रा की छाया उस पर न पड़े और आगत सवेरा उससे डर कर भाग जाए।

चिड़ियो का सगीत, और मदिरो से उठने वाला आरतीगान सभी

मिलकर इस सवेरे का स्वागत कर रहे थे। पास के ही मकान में क संस्कृत का विद्यार्थी शायद महाकवि भास की यह पंक्ति जोर-जोर उच्चारित कर रहा था :—

काल क्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य पंक्तिः।

'समय के क्रम से संसार में परिवर्तन होता रहता है और-भाग्य रेखा धुरीचक्र के घुमाव की भाँति निरन्तर घूमती रहती है।'

